7926
Received
24/8/2001

शोधादर्श

~~55~~
4

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उत्तर प्रदेश, लखनऊ

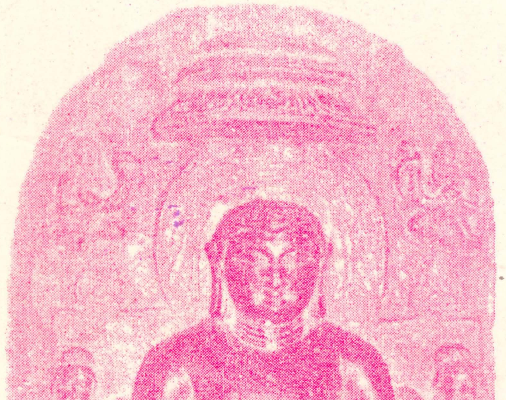

वैशाली (विहार) में श्री दिगम्बर जैन मन्दिर स्थित

भगवान महावीर की प्राचीन अतिशयकारी

२००० वर्ष प्राचीन गुप्तकालीन पाषाण प्रतिमा

{ वैशाली में बौना पोखर (तालाब) से प्राप्त }

आद्य सम्पादक : (स्व.) डॉ. ज्योति प्रसाद जैन
प्रधान सम्पादक : श्री अजित प्रसाद जैन
सह - सम्पादक : श्री रमाकान्त जैन

प्रकाशक :
तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ. प्र.
पारस सदन, आर्य नगर, लखनऊ- २२६ ००४

णाणं णरस्स सारं- सच्चं लोयम्मि सारभूयं

शोधादर्श

वीर निर्वाण संवत् २५२७ **जुलाई २००१ ई.**

विषय क्रम

१. गुरुगुण-कीर्तन : वर्द्धमान महावीर	श्री रमाकान्त जैन	१
२. जीयात् श्री वीरनाथस्य शासनम्	डॉ. ज्योति प्रसाद जैन	७
३. सम्पादकीय : जयति श्रुत देवता	श्री अजित प्रसाद जैन	१२
४. देवि वागीश्वरि-स्तुति		१६
५. महावीर-सन्देश	पं. जुगल किशोर मुख्तार	१६
६. वीर-शासन का जन्मस्थान राजगृह	डॉ. शशिकान्त	१७
७. महावीर जीवन दर्शनः एक मूल्यांकन ▫	डॉ. धर्मचन्द	२५
८. अहिंसा के मूर्तस्वरूप ▫	पद्मश्री रामनारायण उपाध्याय	२६
९. वर्तमान युग में महावीर के उपदेशों की सार्थकता ▫	डॉ. प्रभाकर माचवे	२७
१०. महावीर काल के विभिन्न सम्प्रदाय	मुनि मणिप्रभसागर जी	२९
११. महावीर जन्म जयन्ती कार्यक्रम : इसकी सार्थकता कैसे हो ?	डॉ. चीरंजीलाल बगड़ा	३४
१२. तीर्थंकर महावीर	डॉ. परमानन्द जड़िया	३७
१३. महावीर-वैराग्य	डॉ. महावीर प्रसाद जैन 'प्रशान्त'	३८

१४. परिग्रहवान मुनि मोक्षमार्गी नहीं	डॉ. श्रेयांस कुमार जैन	३९
१५. परिग्रहपरिमाणव्रत-आज के संदर्भ में	डॉ. (श्रीमती) सूरजमुखी जैन	४५
१६. समय शाह	जस्टिस एम.एल.जैन	४९
१७. **चिन्तन कण :**	श्री अजित प्रसाद जैन	
अपनी परम्पराओं को न भूलें		५४
समवशरण		५६
जन्म नगरी कुण्डलपुर		५८
१८. ज्योति अमर रहे	श्रीमती सीमा जैन	६०
१९. सामयिक परिदृश्य : क्षणिकाएं	श्री रमाकान्त जैन	६१
२०. **समाचार विमर्श :**	श्री अजित प्रसाद जैन	
ऐसा तो होना ही था		६२
शास्त्रि परिषद का अधिवेशन		६४
सरकारी समारोह - कितनी प्रभावना, कितनी अवमानना		६६
२१. समाचार		६८
२२. **साहित्य सत्कार :**		
विद्वत् संदेश; प्रणाम; धर्मदेशना (प्रवचन संग्रह); क्या आर्यिका मातायें पूज्य हैं; ध्यान सूत्र; जैन दर्शन गणित; तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकुमचंद भारिल्ल	श्री अजित प्रसाद जैन	७०
दान चिन्तामणि; छत्तीसगढ़ का जैन-शिल्प; महावीर गीतगंगा; जैन पत्र-निर्देशिका; विनायक विनोद; प्रेरणा के प्रदीप।	श्री रमाकान्त जैन	७४
२३. अभिनन्दन		७७
२४. शोक संवेदन		७८
२५. शोधादर्श : पाठकों की दृष्टि में		७९
२६. आभार		८५

(ऊपर □ चिन्हित लेख व रचनायें श्री महावीर निर्वाण समिति, उ.प्र., द्वारा नवम्बर १९७५ में प्रकाशित एवं डॉ. ज्योति प्रसाद जैन द्वारा सम्पादित 'भगवान महावीर स्मृति ग्रन्थ' से साभार उद्धृत - सं.)

वर्द्धमान महावीर

श्रीमत्परमगम्भीरस्याद्वादामोघलाञ्छनम्।
जीयात् त्रैलोक्यनाथस्य शासनं जिनशासनम्।।१।।

- अकलंक कृत प्रमाणसंग्रह

(**भावार्थ-** श्रीयुक्त परम गम्भीर स्याद्वाद सिद्धान्त जिनका अमोघ लाञ्छन (निर्विवाद पहचान) है उन त्रैलोक्यनाथ (तीन लोकों के स्वामी जिनेन्द्रदेव) के शासन (धर्म) जिन-शासन (जैन धर्म) की जय हो!)

श्रीमते केवलज्ञान साम्राज्यपदशालिने।
नमो वीराय भव्योघै धर्मतीर्थप्रवर्तिने।।२।।

- सकलकीर्ति

(**भावार्थ-** श्री सम्पन्न केवलज्ञान रूपी साम्राज्य के स्वामी उन वीर प्रभु को नमस्कार है, जिन्होंने भव्यजनों के हितार्थ धर्मतीर्थ का प्रवर्तन किया था।)

यदीया वाग्गङ्गा विविधनय-कल्लोल- विमला,
बृहज्ज्ञानाम्भोभिर्जगति जनतां या स्नपयति।
इदानीमप्येषा बुध- जन - मरालैः परिचिता,
महावीर-स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु मे।।३।।

- भागेन्दु रचित महावीराष्टक

(**भावार्थ-** जिनकी वाणीरूपी गंगा में अनेकविध विमल नय कल्लोल करती हैं, जिनके वृहद् ज्ञानरूपी जल में जगत की जनता स्नान करती है और जिससे बुधजन रूपी हंस आज भी परिचित हैं, ऐसे वह महावीर स्वामी मेरे नयन-पथगामी हों!)

वीरमपारचरित्रपवित्रं, कर्ममहीरुहमूललवित्रम्।
संसाराप्रतिप्रतिबोधं,परिनिष्क्रमणं केवल बोधम्।।४।।

- माघनन्दि

(**भावार्थ-** हे वीर जिन ! आप अपार पवित्र चरित्र के धारक हैं, कर्म रूपी वृक्ष के मूल का उन्मूलन करने वाले हैं, संसार को प्रतिबोध देने वालों में अप्रतिम हैं और परिनिष्क्रमण कर (दीक्षा लेकर) केवलज्ञान प्राप्त करने वाले हैं।)

गतान्तो विद्यानां त्रिदशवनितानामधिपति,
र्न शक्तो यस्यासीद्गुणलवमपि स्तोतुमखिलम्।
महिम्नामाधारो भुवन विततध्वान्त तपनः,
स भूयान्नो वीरो जनन जय सम्पत्तिजननः।।५।।

- वर्धमानचरिते दामनन्दि

(**भावार्थ-** जिन्होंने समस्त विद्याओं का पार पा लिया है, जिनके अखिल गुणों की लवमात्र भी स्तुति करने में त्रिदशवनिताओं (देवांगनाओं) का अधिपति इन्द्र भी समर्थ नहीं है, जिनके नाम की महिमा ही भुवन (संसार) में भवाताप से बचने का आधार है, ऐसे वह वीर जिन हमारे लिये समस्त जय और सम्पत्ति के जनक हों!)

सद्दृष्टि-ज्ञान-वृत्तात्मा मोक्षमार्गः सनातनः।
आविरासीद्यतो वन्द्ये तमहं वीरमच्युतम्।।६।।

- प्रभाचन्द्र

(**भावार्थ-** मैं उन अच्युत वीर प्रभु को नमस्कार करता हूँ जिनके द्वारा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित्र रूप रत्नत्रयात्मक सनातन मोक्षमार्ग आविर्भूत हुआ।)

श्री वर्द्धमान-वचसा पर- मा- करेण,
रत्नत्रयोत्तम- निधेः परमाऽऽकरेण।
कुर्वन्ति यानि मुनयोऽजनता हि तानि,
वृत्तानि सन्तु सततं जनता हितानि।।७।।

- सिद्धप्रियस्तोत्रे देवनंदि

(**भावार्थ-** उत्कृष्ट लक्ष्मी के कारण, सम्यक् दर्शन- ज्ञान- चारित्र रूप रत्नत्रय के भंडार श्री वर्द्धमान के वचनों के आश्रय से मुनिजन आत्महित साधन करते हैं और सामान्य जन भी अविकारी सुख प्राप्त करते हैं। ऐसे उन भगवान का ऐसा वृत्त सभी जनों के लिये सतत हितकारी हो!)

श्रियं त्रिलोकीतिलकायमानामात्यन्तिकीं ज्ञातसमस्ततत्त्वाम्।
उपागतं सन्मतिमुज्जवलोक्तिं वन्दे जिनेन्द्रं हतमोहतन्द्रम्।।८।।

- वर्धमानचरिते असग

(**भावार्थ-** श्रीयुक्त, तीन लोक के तिलक स्वरूप, अविनाशी, समस्त तत्वों के ज्ञाता, जिनके उज्जवल वचन पूर्वापर विरोध रहित थे, और जिन्होंने मोह रूपी तन्द्रा को नष्ट कर दिया था उन सन्मति जिनेन्द्र (भगवान महावीर) की मैं वन्दना करता हूँ।)

श्रीवर्धमानमनिशं जिनवर्धमानं
त्वां तं नये स्तुतिपथं पथि संप्रधौते।
यो ऽन्त्यो ऽपि तीर्थंकरमग्रिममप्यजैषीत्
काले कलौ च पृथुलीकृतधर्मतीर्थः।।९।।

- उत्तरपुराणे गुणभद्र

(**भावार्थ-** अहर्निश (रात-दिन) मोक्ष-लक्ष्मी से वर्धमान, कलिकाल में धर्मतीर्थ का भारी विस्तार करने वाले और अन्तिम तीर्थंकर होते हुए भी जिन्होंने पूर्ववर्ती तीर्थंकरों को भी जीत लिया है ऐसे उस आप वर्धमान जिनेन्द्र को मैं स्तुति के मार्ग पर लिये जाता हूँ अर्थात् मैं आपकी स्तुति करता हूँ।)

शुद्धज्ञानप्रकाशाय लोकालोकैक भानवे।
नमः श्रीवर्द्धमानाय वर्द्धमानजिनेशिने।।१०।।

- हरिवंशपुराणे जिनसेन पुन्नाट

(**भावार्थ-** शुद्ध ज्ञान ही जिनका प्रकाश है, जो लोक और अलोक को भासमान (प्रकाशवान) करने वाले अद्वितीय भानु हैं, तथा जो अनन्तचतुष्टय रूपी लक्ष्मी से सदा वृद्धिंगत हैं ऐसे श्री वर्द्धमान जिनेन्द्र को नमस्कार है!)

स्थेयाज्जात जयध्वजाऽप्रतिनिधिः प्रोद्भूत भूरिप्रभुः,
प्रध्वस्ताऽखिल-दुर्नय-द्विषदिभः सन्नीति सामर्थ्यतः।
सन्मार्गस्त्रिविधः कुमार्गऽमथनोऽर्हन्वीरनाथः श्रिये,
शश्वत्संस्तुति-गोचरोऽनघधियां श्री सत्यवाक्याधिपः।।११।।

- विद्यानन्द (८वीं शती ईस्वी)

(**भावार्थ-** अद्वितीय विजेता, महान प्रभु, अपनी सन्नीति की सामर्थ्य से समस्त दुर्नय रूपी शत्रु गजों के संहार में सिंह के समान, सम्यक् दर्शन, ज्ञान और चारित्र रूपी त्रिविध सन्मार्ग से कुमार्ग का मथन करने वाले, कलुषित आशय से रहित सुधीजनों द्वारा सदैव संस्तुत, श्री सम्पन्न, सत्य वचनों के अधिपति अर्थात् सत्यवादी अर्हन् वीरनाथ (महावीर स्वामी) हृदय में निवास करें!)

सुप्रभातं जिनेन्द्रस्य वीरः कमललोचनः।
येन कर्माटवी दग्धा शुक्लध्यानोग्रवन्हिना।।१२।

- सुप्रभातस्तोत्रम्

(**भावार्थ-** जिन्होंने शुक्ल ध्यान रूपी प्रचण्ड अग्नि से कर्म रूपी वन को दग्ध कर दिया ऐसे कमल-लोचन वीर जिनेन्द्र के दर्शन से मेरा सुप्रभात हो।)

णाणं सरणं मे दंसणं च सरणं चरियं सरणं च।
तवसंजमं च सरणं भगवं सरणं महावीरो।।१३।।

- आ. वट्टकेर रचित मूलाचार

(**भावार्थ-** मेरे लिये ज्ञान शरण है, दर्शन शरण है, चारित्र शरण है, तप और संयम शरण हैं और भगवान महावीर शरण हैं।)

जय जय जय वीर वीरिय- णाण अणंत सुहा।
महु खमहि भडारा तिहुअणसारा कवणु परमाणु तुहा।।१४।।

- जयमित्र हल्ल

(**भावार्थ-** अनन्त ज्ञान एवं अनन्त सुख के धनी हे वीर भट्टारक, मुझे अपनी शरण में लो। तीन लोक में तुम्हारे समान दूसरा कौन है ? अर्थात् कोई नहीं। हे वीर, तुम्हारी जय हो, जय हो, जय हो !)

अब मोह तार लेहु महावीर।
सिद्धारथ-नन्दन जगवन्दन, पाप निकन्दन धीर।।
ज्ञानी ध्यानी दानी जानी, वानी गहन गंभीर।
मोक्ष के कारण दोष निवारण, रोष विदारण वीर।।
समता सूरत आनन्द पूरत, चूरत आपद पीर।
बालयती दृढ़ व्रती समकिति, दुख दावानल नीर।।
गुण अनन्त भगवन्त अन्त नहीं, शशि कपूर हिम हीर।
'द्यानत' एकहु गुण हम पावें, दूर करैं भव भीर।।१५।।

- द्यानतराय

वीर जिन चरन पूजत, वीर जिन आश्रय रहैं।
वीर नेह विचार शिवसुख, वीर धीरज को गहैं।।
वीर इन्द्रिय अघ घनेरे, वीर विजयी हों सही।
वीर प्रभु मुझ बसहु चित्तनित, वीर कर्म नशावही।।१६।।

- नवलशाह

जाके वंदन थकी दोष दुख दूरिहिं जावैं।
जाके वंदन थकी मुक्तितिय सम्मुख आवैं।।
जाके वंदन थकी वंद्य होवै सुरगन के।

ऐसे वीर जिनेश बंदिहूँ क्रम युग तिनके।।१७।।

– महाचंद

प्रणमों वीर जिनेन्द्र को, चरन कमल शिरनाय।
विघन हरन मंगल करन, आनन्द मोद बढ़ाय।।१८।।

– श्रीलाल पण्डित

हे ज्योतिपुंज जयवीर! सत्य का ज्ञाता दृष्टा तू।
हे महाप्राण! मूर्च्छित जनमन का जीवन सृष्टा तू।।
हे जिन! प्रभात तू सघन तमस् से घिरती संसृति का।
हे निर्विकार! परिशोधक मानवता की संस्कृति का।।
तू अनन्त है, अजर अमर है तेरा जीवन दर्शन।
अखिल विश्व का तव चरणों में हो निर्वाणगामी वन्दन।।१९।।

– उपाध्याय अमर मुनि

सुध्यान में लवलीन हो, जब घातिया चारों हने,
सर्वज्ञ बोध विरागता को, पा लिया तब आपने।
उपदेश दे हितकर अनेकों भव्य, निज सम कर लिये,
रवि ज्ञान किरण प्रकाश डालो, वीर ! मेरे भी हिये।।२०।।

– पं. मक्खनलाल न्यायाचार्य

हे पूर्ण पुरातन, अनघ, अभय, हे दिव्य, अनामय चिर-अशेष।
तुम अभिनव, अभिनव गति महान, अभिनव अभिनन्दन, नयनिवेश।।
युग-परिवर्तक, युग गति वाहक, युग युग अजेय दुर्द्धर्ष "वीर"।
भारत-भूतल कर गये स्वर्ग, नारकी विश्व का वक्ष चीर।।२१।।

– शिव सिंह चौहान- 'गुञ्जन'

'वीर' की वरीयता बखानते, कल्पना उफान थम रहा नहीं।
पंच व्रत से शुद्ध हो रहा दिगन्त, शान्ति स्रोत संवलित हुई मही।।
कुण्डग्राम प्राप्त कर धन्य हो गया, वर्धमान की वरीयता महान।
सत्य-शील-शांति-स्नेह संवलित, विश्व भाग्य जगमगा उठा विहान।।
अणु-विभीषिका से त्रस्त जीव को, 'वीर' का अभय उबारता रहे।
सृष्टि हम समष्टि से संवार दें, स्नेह-शांति की सुधा यहां बहे।।२२।

– शोभनाथ पाठक

आज हिंसा रह गई बुझते प्रदीपों का उजाला।
विश्व में होगा अहिंसा-सत्य का फिर बोलबाला।।
फिर बहायेगा निरर्थक रक्त मानव का न मानव।
गुञ्जरित होगा अहिंसक 'वीर' के संदेश का रव।।
जग जलाने के लिये कोई न फिर दीपक जलेगा।
अमर-जीवन-दीप जल कर विश्व में तमहर बनेगा।।
आज हिंसा दानवों के केन्द्र में भीषण प्रलय हों।
विश्व के हित 'वीर' के संदेश जग में विजय हों।।२३।।

- कल्याणकुमार 'शशि'

जब तक है इतिहास, धरा पर नाम तुम्हारा।
पावन ही पावन, गायेगी गंगा धारा।।
संतों की चूड़ामणि, युग-युग 'वीर' तुम्हारी।
पीड़ित मानवता ने, सजल आरती उतारी।।२४।।

- रमेश 'रंजक'

मेरी बाधाएं हरो,
महावीर भगवान।
लो पूजा के फूल लो,
दूर करो अज्ञान।।२५।।

- रघुवीर शरण 'मित्र'

अर्चना कर रहा जन-जन
आज जिन वर्द्धमान महावीर की,
ज्योति ज्ञान की रही जगमगा
उन सर्वहितैषी सन्मति वीर की।
आरती का थाल किया सज्जित
'रमाकान्त' ने बड़े चाव से।
वीतराग भले ही हों वे,
स्वीकारें प्रभु मोद भाव से।।२६।।

- रमाकान्त जैन

जीयात् श्री वीरनाथस्य शासनम्

- डॉ. ज्योति प्रसाद जैन

श्रमण तीर्थंकरों द्वारा प्रतिष्ठापित धर्म व्यवस्था का नाम ही धर्मतीर्थ, धर्मशासन या जिनशासन है। केवलज्ञान-प्राप्ति के उपरांत प्रत्येक तीर्थंकर सच्चे सुख के साधन-मोक्षमार्ग के उपदेश द्वारा अपने धर्मचक्र का प्रवर्तन करता है, धर्मतीर्थ का पुनरुद्धार करता है और अपना धर्मशासन स्थापित करता है। उस समय से लेकर अगले तीर्थंकर के शासन की स्थापना तक उसी तीर्थंकर का शासन चलता है और लोकप्रसिद्ध रहता है। इस प्रकार ऋषभादि पार्श्व (८७७-७७७ ई. पूर्व) पर्यन्त तेईस तीर्थंकरों ने अपने-अपने समय में अपने-अपने धर्मशासन की संस्थापना की थी।

इस परम्परा के अंतिम तीर्थंकर, निर्ग्रन्थ ज्ञातृपुत्र वर्द्धमान वीरनाथ या महावीर थे। तीस वर्ष के भरे यौवन में बाल ब्रह्मचारी महावीर ने समस्त ऐहिक भोगों से विरक्त होकर महाभिनिष्क्रमण किया था- जैनेश्वरी दीक्षा लेकर उन्होंने तप, त्याग और संयम का दुस्तर मार्ग अपनाया था। बारह वर्ष पर्यन्त यत्र-तत्र-विचरते हुए और उग्रातिउग्र तप विधान में लीन रहते हुए एक दिन जब वह ऋजुकूला नदी के तटवर्ती जृम्भिका ग्राम के बाहर शालवृक्ष की छाया में एक शिलापट्ट के ऊपर शुक्लध्यानस्थ अवस्था में आसीन थे, उन्होंने क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ होकर समस्त घातिया कर्मों को पूर्णतया क्षय कर दिया और केवलज्ञान की सम्प्राप्ति की- वह अर्हत्केवलि पद को प्राप्त हुए। उस समय वैशाख शुक्ल दशमी का अपराह्न था और चन्द्रमा हस्तोत्तर नक्षत्र में स्थित था।[१] यह घटना विक्रम पूर्व ५००, २६ अप्रैल ईस्वी पूर्व ५५७ की है।

केवलज्ञान प्राप्त हो जाने पर भी महावीर ने अपने धर्मचक्र का तत्काल प्रवर्तन नहीं किया। उक्त स्थान से विहार करके वह पंचशैलपुर (गिरिव्रज या राजगृही) के वैभार पर्वत पर पहुंचे। यह सुरम्य पर्वत शिशुनाग वंशी मगध सम्राट श्रेणिक बिम्बसार की राजधानी राजगृही की सीमा पर उसके पश्चिम-दक्षिणी कोण पर स्थित था। आषाढ़ शुक्ल १५ के दिन इसी स्थान पर भ. महावीर को विप्रश्रेष्ठ इन्द्रभूति गौतम जैसे महातेजस्वी एवं सर्वथैव समुपयुक्त गणधर शिष्य की प्राप्ति हुई, और उसके नेतृत्व में उनके चतुर्विध संघ का संगठन हुआ।[२] इसी से आषाढ़ी पूर्णिमा लोक में 'गुरु पूर्णिमा' के नाम से प्रसिद्ध हुई।

अगले दिन, श्रावण कृष्ण प्रतिपदा के प्रातःकाल उसी पंचशैलपुर के पूर्व-दक्षिण कोण पर स्थित एवं नाना प्रकार के वृक्षों से सुशोभित सुरम्य विपुलाचल पर भ० महावीर की समवसरण सभा जुड़ी। इस सभा में मुनि-आर्यिका-श्रावक-श्राविका रूप उनके चतुर्विध संघ

के अगणित सदस्य उपस्थित थे। आत्मकल्याण के इच्छुक सभी भव्य-प्राणी, सभी वर्गों एवं वर्णों के स्त्री-पुरुष ही नहीं, पशु-पक्षी तक भी, बिना किसी भेदभाव के वहां एक ही स्थान पर साथ-साथ बैठे थे। मुनियों के नेता गौतम गणधर थे, आर्यिकाओं का नेतृत्व साध्वी चन्दना सती कर रही थीं, गृहस्थ पुरुषों के अग्रणी स्वयं मगध सम्राट श्रेणिक थे और स्त्रियों का नेतृत्व उनकी पट्टमहिषी चेलना कर रही थीं। सभा के मध्य में गन्धकुटी पर भगवान विराजमान थे। ठीक सूर्योदय के समय जबकि रुद्रमुहूर्त अैर अभिजित नक्षत्र का योग था श्रमणोत्तम अर्हत् महावीर का दिव्य उपदेश 'सर्वसत्वानांहितसुखाय' प्रारंभ हुआ, उन्होंने अपना धर्मचक्र प्रवर्तन किया, उनके धर्मतीर्थ की उत्पत्ति हुई, उनके धर्म शासन की स्थापना हुई और उनका तीर्थंकरत्व सार्थक हुआ। उस दिन वह जगद्गुरु हुए और यह पर्व 'गुरुप्रतिपदा' के नाम से विख्यात हुआ। संयोग से भारतवर्ष की सर्व प्राचीन और जैन परम्परानुसार अनादिकालीन कालगणना में श्रावण कृष्ण प्रतिपदा की तिथि वर्ष के प्रथम मास का प्रथम दिन भी थी। अतएव यह धर्मचक्र प्रवर्तन नवयुगारम्भ, नव वर्ष के प्रथम दिन, चतुर्थ काल की समाप्ति और पंचम काल के प्रारंभ से ठीक ३४ वर्ष पूर्व (विक्रम से ५०० वर्ष पूर्व, शक से ६३५ वर्ष पूर्व और ईसा से ५५७ वर्ष पूर्व, १ जुलाई को) हुआ था।३

तत्पश्चात, तीस वर्ष पर्यन्त देश-देश में विहार करके, तीर्थंकर महावीर ने बिना किसी भेद-भाव के संसार के समस्त प्राणियों के हितसुख के लिये प्रतिदिन तीन-तीन बार निरन्तर अपना दिव्य उपदेश दिया। इस अथक निस्वार्थ साधना से उस सर्वज्ञ-वीतराग-हितोपदेशी ने अपने सर्वकल्याणकारी धर्मशासन की प्रतिष्ठापना की थी और तभी से उनकी धर्मव्यवस्था वीरशासन के नाम से प्रसिद्ध चली आती है।

संसाररूपी महासागर को पार करने में प्रधान निमित्त होने के कारण महावीर का शासन 'तीर्थ' या 'धर्मतीर्थ' कहलाया।४ जयधवल टीका में उद्धृत एक प्राचीन गाथा में 'रागद्वेषभयातीतजिनोत्तम वीरनाथ महावीर' को संसारी प्राणियों के समस्त सन्देहों को दूर करने वाले धर्मतीर्थ का कर्ता कहा है।५ स्वामी समन्तभद्र (२री शती ई.) ने महावीर के तीर्थ को 'सर्वोदयतीर्थ' बताया है।६ स्वामी विद्यानंदि ने उसे प्राणियों के अभ्युदय के समस्त कारणों का हेतु सूचित किया है।७ और मथुरा आदि के शुंग-शक-कुषाणकालीन प्राचीन जैनाचार्यों ने उसका उद्देश्य 'सर्वसत्वानां हितसुखाय' घोषित किया है।८

वास्तव में वीरशासन, बिना किसी भेद-भाव के, संसार के समस्त मनुष्यों का ही नहीं, वरन् प्राणीमात्र का सर्वतोमुखी उत्कर्ष, अभ्युदय, हित और सुख सम्पादन करने वाला धर्मशासन, धर्मतीर्थ या धर्मव्यवस्था है। इसी से गत साधिक ढाई हजार वर्ष से उसकी जय मनाई जाती चली आ रही है। कुन्दकुन्द, समन्तभद्र, पूज्यपाद, सिद्धसेन, अकलंक, वीरसेन, हरिभद्र, जिनसेन, विद्यानंदि, वादिराज, प्रभाचन्द्र, हेमचन्द्र आदि अनेक दिग्गज आचार्यों ने,

अनेक राजा-महाराजाओं ने और जनसाधारण में अनगिनत श्रावक-श्राविकाओं ने इस वीरशासन की जय मनाई है। किन्तु आज जैसे मौखिक जय शब्दोच्चारण मात्र वाली जय नहीं, वरन् अपनी प्रतिभा, अपने सदाचरण एवं लोकोन्नायक कार्यकलापों द्वारा वीरशासन की सच्ची प्रभावना करके, उसे प्रभावक, सर्वविजयी और सर्वकल्याणकर चरितार्थ करके उसकी सार्थक जय मनाई है।

प्राचीन साहित्य और शिलालेखों में वीरशासन की ऐसी सार्थक जय मनाने वालों के अनेक उदाहरण प्राप्त हैं, उनके जयघोष भी उन्हीं के अनुरूप स्फूर्तिदायक एवं उन्नायक होते थे। इन जयघोषों के कुछ नमूने नीचे दिये जाते हैं-

१. तवजिन शासन विभवो,
जयति कलावपि गुणानुशासन विभवः।
दोषकशाऽसनविभवः,
स्तुवन्ति चैवं प्रभाकृशासन विभवः।।१३७।।

- स्वयम्भू स्तोत्र, समन्तभद्र (२री शती ई.)

२- जयति भगवाञ्जिनेन्द्रो
गुणरुन्द्रः प्राथितपरमकारुणिकः।
त्रैलोक्याश्वासकरी दयापताकोच्छ्रिता यस्य।।

-काकुत्स्थवर्म कदंब का शिलालेख
(लगभग ४०० ई०)

३- जयत्यर्हंस्त्रिलोकेशः सर्वभूतहितेरतः।
रागाद्यरि हरोनन्तोनन्त ज्ञानदृगीश्वरः।।

- कदंबमृगेशवर्म का ताम्रपत्र (लगभग ४२५ ई०)

४- जयत्यनन्त संसार पारावारैकसेतवः।
महावीरार्हतः पूताश्चरणाम्बुज रेणवः।।

- चालुक्यपुलकेशि प्र० का अल्तेम लेख
(५४२ ई०)

५- भद्दंमिच्छादंसण
समूहमइयस्य अमयसारस्स।
जिणवयणस्स भगवओ
संविग्ग-सुहाहिगम्मस्स।।७०।।

- सिद्धसेन, सन्मतितर्क (ल० ६०० ई०)

६- श्रीमत्परमगंभीर स्याद्वादमोघलांछनम्।
जीयात् त्रैलोक्यनाथस्य शासनम् जिनशासनम्।।
-प्रमाणसंग्रह, अकलंकदेव (६४३ ई०)

जिनशासन की जय मनाने वाला यह अन्तिम श्लोक सर्वाधिक लोकप्रिय एवं प्रभावक सिद्ध हुआ। ६वीं शताब्दी से ही शिलालेखों के मंगलाचरण के रूप में इसका प्रयोग प्रारंभ हो गया मिलता है और १२वीं शती के उपरान्त तो यह श्लोक इस कार्य के लिये प्रायः रूढ़ हो गया। मध्यकालीन दक्षिण भारत के जैन शिलालेखों और अनेक ग्रन्थों में ही नहीं वरन् थोड़े से परिवर्तन के साथ अनेक जैनेतर ग्रन्थों एवं अभिलेखों में भी यह प्रयुक्त हुआ मिलता है। उपरोक्त ६ पद्यों के अतिरिक्त भी अन्य पचासों पद्य जिनशासन का जयघोष करने वाले उपलब्ध हैं।

श्रीमज्जैनं जयतु शासनम्।

("जैन-संदेश (शोध-विशेषांक)" के प्रवेशांक (१७ जुलाई, १६५८) से साभार-सम्पादक)

---

१. ग्रामपुर-खेट-कर्वट-मटम्ब-घोषाकरान् प्रविजहार।
उग्रैस्तपो विधानैर्द्वादशवर्षाण्यमर पूज्यः।।१०।
ऋजुकूलायास्तीरे शालद्रुम संश्रिते शिलापट्टे।
अपरान्हे षष्ठेनास्थितस्य खलु जृम्भकाग्रामे।।११।।
वैशाख सितदशम्यां हस्तोत्तर मध्यमाश्रिते चंद्रे।
क्षपकश्रेण्यारूढस्योत्पन्नं केवलज्ञानम्।।१२।।
- पूज्यपादीय निर्वाणभक्ति (५वीं शती ई.)

प्रायः ऐसा ही कथन धवल, जयधवल नामक प्राचीन आगमिक टीकाओं (८वीं शती ई.) में उद्धृत निम्नोक्त प्राचीनतर गाथाओं में भी पाया जाता है-

गमइय छदुमत्थत्तं वारसवासाणि पंचमासेय।
पण्णारसाणि दिणाणिय तिरयण सुद्धो महावीरो।।
उजुकूलणदीतीरे जंभियगामे वहि सिलावट्टे।
छट्ठेणदावेंतो अवरण्हे पाय छायाए।।
वइसाह जोण्ह पक्खे दसमीए खवगसेढि मारुढो।
हंतूण घाइकम्मं केवलणाणं समावण्णो।।

२. जैना सोर्सेज आव दी हिस्टरी आव ऐन्शेन्ट इंडिया, अ० २।
३. अथ भगवान्सम्प्रापद्दिव्यं वैभारपर्वतं रम्यं।
चातुर्वर्ण्य सुसंघस्तत्राभूद् गौतमप्रभृति।१३। - निर्वाणभक्ति, पूज्यपाद।

४.- 'इमिस्सेऽवसप्पणीए चउत्थ समयस्स पच्छिमे भाए।
चोत्तीसवाससेसे किंचिव सेसूणए संते।।
वासस्स पढ़ममासे पढमे पक्म्खम्मि सावणे बहुले।
पाडिवद पुब्वदिवसे तित्थुपन्नो दु अभिजम्मि।।
सावण बहुल पडिवदे रुद्दमुहुत्ते सुहोदए रविणो।
अभिजस्स पढम जोए जत्थ जुगादी मुणेयद्य।।
पंचसेलपुरेरम्भे विउले पब्वदुत्तमे।
णाणा दुम समाइण्णे देवदाणव वंदिदे।।
महावीरेण अत्थो कहिओ भवियलोअस्य'-श्री धवल (७८० ई.)
सावण बहुले पाडिव रुद्दमुहुत्ते, सुहोदए रविणो।
अभिजस्स पढम जोए जुगस्सआदी, इमस्स पुढं।। -(तिलोयपण्णत्ति, १-७०)

५. 'तरति संसार महार्णवं येन तत्तीर्थमिति'- विद्यानंदि।

६. णिस्संसयकरो वीरो महावीरो जिणुत्तमो।
रागदोसभयादीदो धम्मतीत्थस्सकारओ।।

७. सर्वान्तवत्तद्गुण मुख्यकल्पं,सर्वान्तशून्यं च मिथोऽनपेक्षम्।
सर्वापदामन्तकरं निरन्तं, सर्वोदयं तीर्थमिदं तवैव।।६१।। -युक्त्यानुशासन।

८. सर्वेषामभ्युदयकारणानां-हेतुत्वादभ्युदयहेतुत्वोपपत्तेः।।

९. देखिये- एपी. इंडि., जिल्द १० में एच. लूडर्स की ब्राह्मी शिलालेखों की सूची के अन्तर्गत जैन शिलालेख।

◆◆◆◆

प्रत्येक धर्म की उच्चता इसी बात में है कि उसमें अहिंसा तत्त्व की प्रधानता हो। अहिंसा तत्त्व को यदि किसी ने अधिक से अधिक विकसित किया है तो वह महावीर स्वामी थे। **-राष्ट्रपिता महात्मा गांधी**

आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की भित्ति पर जो किले मानव समाज ने बनाये हैं और बनाता जा रहा है उनकी सुरक्षा के लिये आध्यात्मिक तत्त्व का सहारा लेना आवश्यक है। भगवान महावीर के जीवन चारित्र और उनकी शिक्षाओं से हमें वे तत्त्व आसानी से मिल सकते हैं।
-प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद

भगवान महावीर के संदेश किसी खास कौम या फिरके के लिये नहीं हैं, बल्कि समस्त संसार के लिये हैं। **-चक्रवर्ती राजगोपालाचारी**

सम्पादकीय

जयति श्रुत देवता

अब से लगभग दो हजार वर्ष पूर्व, ईसवी सन् ७५ की ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी का दिन भारतीय संस्कृति के इतिहास का एक अविस्मरणीय दिन था। उस दिन जैन धर्म के महान सिद्धान्त ग्रंथ 'षट्खंडागम' को ताड़ पत्रों पर उत्कीर्ण करके पुस्तक रूप में लोकार्पित किया गया था तथा चतुर्विध संघ द्वारा वाग्देवी सरस्वती की पूजा की गई थी। शौरसेनी प्राकृत भाषा में भगवन्त पुष्पदंत-भूतबलि मुनिवर्य द्वय विरचित जैन दर्शन का यह महान सिद्धान्त ग्रंथ, जो अब ८वीं शताब्दी ई. में आचार्य वीरसेन स्वामीकृत एक लाख श्लोक प्रमाण संस्कृत टीका व ३ खण्ड के हिन्दी भाषानुवाद सहित १८ जिल्दों में प्रकाशित है, न केवल दिगम्बर जैन आम्नाय का प्रथम पुस्तकारूढ़ ग्रंथ है, वरन् संसार के इतिहास की प्रथम पुस्तक है जिसके समारोह पूर्वक विधिवत् लोकार्पण (सार्वजनिक पूजा) किए जाने का तिथि सहित उल्लेख उपलब्ध है।

ऐसा नहीं है कि ग्रंथ रचना ही इस ग्रंथ के साथ प्रारंभ हुई। इससे साधिक ६०० वर्ष पूर्व ही अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी के ११ गणधरों ने (जिनमें महापंडित इन्द्रभूति गौतम प्रमुख थे) भगवान की दिव्य ध्वनि के आधार से भगवान के उपदेशों को द्वादशांग श्रुत के रूप में निबद्ध किया था और उससे भी सहस्रों-सहस्रों वर्ष पूर्व से सभ्यता के आदि युग में जन्मे प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव सहित अन्य २३ तीर्थंकरों के गणधर देव भी अपने-अपने तीर्थंकरों के उपदेशों को श्रुतआगम के रूप में संकलित करते आए थे लेकिन पर्याप्त लेखन सामग्री के अभाव में गुरु-शिष्य परम्परा से कंठस्थ रूप में चलते रहने के कारण भगवान महावीर के समय तक पूर्व तीर्थंकरों के गणधरों द्वारा निबद्ध श्रुतागम समय के साथ प्रायः पूर्णतया विलुप्त हो चुका था तथा गौतमादि गणधर देवों द्वारा भगवान महावीर की दिव्य देशना से संकलित एवं निबद्ध द्वादशांग श्रुत भी अन्तिम श्रुत केवली भगवन्त श्री भद्रबाहु स्वामी के वीर निर्वाण सं. १६२ में महाप्रयाण के बाद श्रुतधर आचार्यों की स्मृति क्षीणता के कारण अक्षुण्ण न रह सका और विच्छिन्न हो गया। यद्यपि श्रुतधर आचार्यों की समय-समय पर संगीतियां भी आयोजित हुईं तथापि श्रुतांग का बहुभाग विलुप्त या छिन्न भिन्न ही हो गया। एकदेश श्रुतधर आचार्यों की परम्परा भी वीर निर्वाण के ६८३ वर्ष बाद तक ही चल पाई।

कुछ एकदेश श्रुतधर आचार्यों ने उनको प्राप्त श्रुतांश के भी शिष्यों में निरन्तर वृद्धि को प्राप्त हो रही स्मृति क्षीणता के कारण समय के साथ विलुप्त हो जाने की आशंका से चिन्तित होकर स्वयं या अपने सुयोग्य शिष्यों को वाचना देकर अपने को प्राप्त श्रुतांश के आधार पर स्वतंत्र ग्रंथों की रचना प्रारंभ कर दी। श्रुत केवलियों के उपरान्त की ईसा पूर्व

की शताब्दियों में इन एकदेश श्रुतधर आचार्यों की अनुकम्पा से विरचित श्रुत-आगम आधारित ग्रंथों में भगवन्त कुन्दकुन्दाचार्य कृत समयसार (जिसके विषय-वस्तु की वाचना उन्होंने स्वयं अंतिम श्रुतकेवली भगवन्त श्रीमद् भद्रबाहु स्वामी से ली थी) प्रवचनसार, नियमसार, अष्टपाहुड़ आदि, श्री गुणधराचार्य कृत कषाय पाहुड़, आचार्य वट्टकेरि कृत मूलाचार तथा शिवार्य कृत भगवती आराधना दिगम्बर जैन आम्नाय के आगम-आधारित मूल ग्रंथों में प्रमुख हैं। लेकिन लेखन सामग्री के अभाव में ये महान ग्रंथ अगली कुछ शताब्दियों तक गुरु-शिष्य परम्परा से कंठस्थ रूप में ही संरक्षित चलते रहे तथा इनका पुस्तक रूप में लिपिकरण बाद में ही संभव हो सका।

ग्रंथ रचना के साथ-साथ ही ताड़पत्रों पर लिपिबद्ध कर पुस्तकारूढ़ होने का प्रथम श्रेय जैन दर्शन के महान सिद्धान्त ग्रंथ षट्खंडागम को ही प्राप्त हुआ, जिसकी रचना मुनिवर्य पुष्पदंत-भूतबलि ने एकदेश श्रुतधर आचार्य श्री धरसेन स्वामी से द्वादशांग श्रुत के बारहवें दृष्टिवाद अंग में समाहित अग्रायणी पूर्व के चयन लब्धि अधिकार के कर्म प्रकृति प्राभृत की वाचना लेकर की थी।

यद्यपि परवर्ती आचार्यों ने इस ग्रंथ को छः खंडों में विभक्त होने के कारण इसे षट्खंडागम नाम दिया, न तो यह सम्पूर्ण श्रुतागम है, वरन् श्रुत के एक अत्यल्प अंश पर आधारित है और न ही इसके रचनाकार मुनि पुंगवों ने यह दावा किया है कि यह शब्द रूप से भी श्रुतागम का कर्म प्रकृति प्राभृत है। तथापि इसकी प्रामाणिकता मूल आगम के समान ही स्वीकार की गई है।

ताड़पत्रों को लिपि उत्कीर्ण करने योग्य बनाने की प्रक्रिया काफी जटिल व श्रमसाध्य थी तथापि पर्याप्त लेखन सामग्री की उपलब्धता सुनिश्चित हो जाने के परिणामस्वरूप इस ग्रंथ को पुस्तकारूढ़ किए जाने ने एक महान सारस्वत अभियान को जन्म दिया। पूर्व रचित ग्रंथों को ताड़पत्रों पर लिपिबद्ध किया गया तथा ज्योतिर्धर आचार्यों द्वारा नवीन ग्रंथों की रचना को संबल मिला। वीणापाणि सरस्वती देवी के जैन संस्करण, पुस्तक धारिणी वाग्देवी सरस्वती का अवतरण हुआ। ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी ज्ञान के पर्व श्रुतपंचमी के रूप में पूज्य हुई। ज्ञान के सार्वजनिक प्रचार-प्रसार के युग का प्रारंभ हुआ। (कंकाली टीला (मथुरा) के उत्खनन में प्राप्त जैन पुरावशेषों में पुस्तकधारिणी वाग्देवी सरस्वती की सन् १३२ ई. में प्रतिष्ठित एक खंडित प्रतिमा भी प्राप्त हुई है।)

श्रुत पंचमी पर्व ज्ञान की आराधना, संरक्षण और संवर्द्धन को अर्पित दिन है। इस पर्व के कारण ही कालान्तर में शास्त्र भंडारों, ग्रंथागारों की स्थापना संभव हो सकी। इस दिन शास्त्र-भंडारों, ग्रंथागारों की सार-सम्हाल की जाती है। साधुओं, शास्त्र भडारों, ग्रंथागारों तथा विद्वज्जनों को ग्रंथ भेंट करने में विशेष पुण्य माना जाता है, स्वाध्याय करने का नियम लिया जाता है। स्वाध्याय ही तो वस्तुतः जिनवाणी माता की, शास्त्र की, देवी सरस्वती की पूजा है।

दूरदृष्टि जैनाचार्यों ने गृहस्थ धर्म में दान की महत्ता पर विशेष बल दिया था तथा औषधि, आहार व अभयदान के साथ-साथ शास्त्र दान से विशेष पुण्य का अर्जन घोषित किया गया तथा श्रावक के नैतिक षट् कर्मों में शास्त्र-पूजा- स्वाध्याय को भी रखा गया। परिणामस्वरूप धर्मनिष्ठ श्रावकों में शास्त्र- दान की भी होड़ लग गई। मध्ययुगीन शिलालेखों के परिशीलन से ज्ञात होता है कि धर्मनिष्ठ राजन्य एवं श्रेष्ठिजन आचार्यों, कवियों एवं विद्वज्जनों से साग्रह अनुरोध कर नवीन ग्रंथों का निर्माण कराते थे तथा पूर्ण होने पर गाजे बाजे के साथ हाथी पर ग्रंथ की शोभायात्रा निकालकर उसका लोकार्पण कराते थे। पूर्व रचित ग्रंथों की भी हस्तलिपियां तैयार कराकर विभिन्न स्थानों के देव मंदिरों में भेंट स्वरूप श्रावकों के स्वाध्याय हेतु भिजवाते थे। श्रवणबेलगोला (कर्नाटक) के एक शिलालेख के अनुसार होयसल सम्राट विष्णुवर्द्धन (११०६-११४१ ई.) की पट्ट-महादेवी शान्तला ने षट्खंडागम ग्रंथ की (एक लाख श्लोक प्रमाण संस्कृत टीका सहित) प्रतिलिपियां ताड़पत्रों पर उत्कीर्ण कराकर जिनमंदिरों को भेंट की थीं। ग्रंथ के पत्रों पर शान्तला देवी तथा सम्राट विष्णुवर्द्धन के स्वर्ण चित्र भी अंकित किए गए थे। एक अन्य शिलालेख से पता चलता है कि इससे भी लगभग १५० वर्ष पूर्व चालुक्य सम्राट तैलप द्वितीय (९७३-९९७ ई.) के महादंडनायक नागदेव की धर्मपरायण भार्या सती अतिमब्बे ने कन्नड़ महाकवि पोन्न से शांतिनाथ पुराण की रचना कराई तथा उस ग्रंथ की एक सहस्र प्रतियां ताड़पत्रों पर उत्कीर्ण कराकर विभिन्न जिन मंदिरों में वितरण कराई जिसके लिए कृतज्ञ चतुर्विध संघ ने उसे 'दान चिंतामणि' के विरुद से सम्मानित किया था। मुद्रण युग के प्रारंभ होने के बाद आज भी धर्मनिष्ठ श्रावकों द्वारा इस दिन शास्त्र भंडारों व विद्वज्जनों को शास्त्र ग्रंथ भेंट करने की परम्परा चली आ रही है। इसी परम्परा की फलश्रुति में शास्त्र भण्डार-ग्रंथागार अस्तित्व में आए तथा आज भी उनका संवर्द्धन हो रहा है।

श्रुत पंचमी वस्तुतः ज्ञान के मंदिर-शास्त्र भंडारों, ग्रंथागारों, पुस्तकालयों की स्थापना का पर्व है। **यदि भगवान महावीर स्वामी के २६००वें जन्म कल्याणक महोत्सव वर्ष में जैन धर्म के एक संदर्भ पुस्तकालय की स्थापना हो जाय जिसमें जैन धर्म, दर्शन, संस्कृति विषयक सभी मुद्रित ग्रंथ एवं पत्र-पत्रिकाएं संगृहीत की जायें तो यह एक बड़ी स्थायी उपलब्धि होगी।**

श्रुत पंचमी पर्व ज्ञान के समाजीकरण का पर्व है। षट्खंडागम ग्रंथ ताड़पत्रों पर लिपिबद्ध कर पुस्तकारूढ़ किए जाने के पूर्व ज्योतिर्धर आचार्यों-मुनियों के कंठ में ही श्रुत स्थित था। इस ग्रंथ से श्रुत देवता का भूतल पर अवतरण हुआ। श्रुत का ज्ञान स्वाध्याय प्रेमी गृहस्थों को भी सुलभ हुआ। ताड़पत्रों के रूप में लेखन सामग्री की सुलभता से धर्मेतर साहित्य का भी प्रचुर मात्रा में सृजन प्रारंभ हुआ। मानव संस्कृति में क्रांति आई। वह वेग से प्रगति पथ पर अग्रसर हुई।

ज्ञान के क्षेत्र में दूसरी क्रांति कागज के उपलब्ध हो जाने पर हुई और तीसरी क्रांति मुद्रण के प्रारंभ से हुई।

श्रुत पंचमी ग्रंथागारों-पुस्तकालयों की स्थापना का पुण्य पर्व है। हमने भी २५ वर्ष पूर्व १९७६ ई. में इसी दिन एक लघु प्रयास के रूप में तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र शोध पुस्तकालय की लखनऊ में स्थापना की थी तथा इस वर्ष की श्रुत पंचमी को पुस्तकालय को एक नए उपयुक्त कक्ष में स्थानान्तरित कर षट्खंडागम ग्रंथ की पूजा के साथ श्रुत देवी को अपनी तुच्छ विनयांजलि अर्पित की थी। इस पुस्तकालय में जैन धर्म की सभी आम्नायों का साहित्य तो समान रूप से संकलित किया गया ही है, तुलनात्मक अध्ययन के लिए बौद्ध धर्म, वैदिक, ब्राह्मण, सनातन धर्म का प्रमुख साहित्य भी रखा गया है, कुरान और बाइबिल के भी हिन्दी संस्करण रखे गए हैं। सम्प्रति इस पुस्तकालय से अनेक शोध छात्र-छात्राएं लाभान्वित हो रहे हैं।

भगवान महावीर स्वामी के २६००वें जन्म कल्याणक महोत्सव वर्ष के कार्यक्रमों की श्रृंखला में उत्तर प्रदेश शासन के राष्ट्रीय एकीकरण विभाग के तत्वावधान में तथा जैन धर्म प्रवर्द्धनी सभा लखनऊ के सहयोग से दि. २७ मई की संध्या में स्थानीय राय उमानाथ बली प्रेक्षागृह में श्रुत पंचमी पर्व पर एक कार्यक्रम प्रस्तुत किया गया था। यद्यपि वक्ताओं में माननीय डॉ. शीमा रिज़वी, राज्यमंत्री के अतिरिक्त सभी जैन धर्मावलंबी थे पर खेद के साथ लिखना पड़ रहा है कि किसी भी विद्वान वक्ता ने श्रुत पंचमी पर्व के महत्व पर सार्थक प्रकाश नहीं डाला। दैनिक जागरण दि. २८ मई में प्रकाशित इस कार्यक्रम की रिपोर्टिंग का निम्नलिखित अंश अवलोकनीय है-

'मालूम हो कि श्रुत पंचमी पर्व पर भगवान महावीर के ग्रंथों को लिपिबद्ध किया गया था और तभी से धार्मिक पुस्तकों को सुरक्षित रखने के मकसद से यह पर्व मनाया जाता रहा है **पर मौजूदा समय में इस पर्व की उपयोगिता बहुत कम हो गई है।**'

हमारी अल्प बुद्धि में तो जैन धर्म में ज्ञान की पूजा का ही सर्वाधिक महत्व है। हमारे उपास्य देव अर्हन्त भगवान देहधारी ज्ञानपुंज ही तो हैं, जो कठोर संयम-साधना से अपनी आत्मा के ज्ञान गुण को पूर्ण विकसित कर कृत-कृत्य, जीवन्मुक्त हुए थे तथा जिन्होंने अपनी दिव्य देशना में उस धर्म का उपदेश दिया था जिसका पालन कर कोई भी व्यक्ति उन्हीं के समान सर्वज्ञ होकर जीवन्मुक्त हो सकता है, भवसागर को पार कर सकता है। श्रुत पंचमी ज्ञान की उपासना का पर्व है। इसी दिन २००० वर्ष पूर्व ज्ञान का सामाजीकरण प्रारंभ हुआ, शिव की जटाओं से (श्रुतधर प्रज्ञावान आचार्यों के कंठ से) ज्ञान गंगा का भूतल पर अवतरण हुआ और इस ज्ञान गंगा का भूतल पर मार्ग प्रशस्त करने वाले भगीरथ थे मुनिवर्य पुष्पदंत-भूतबलि, जिन्होंने ताड़पत्रों पर ग्रंथ लेखन सुलभ कर दिखाया और ज्ञान-विज्ञान के अक्षय भण्डार को जन-जन को सुलभ करने का मार्ग प्रशस्त किया।

हमारी समझ में तो ज्ञान-विज्ञान के प्रचार-प्रसार की प्रेरणा देने वाले ज्ञान पर्व-श्रुत पंचमी की उपयोगिता एवं इसका महत्व देवी सरस्वती के उपासकों के लिए सदा ही बना रहेगा। जयति श्रुत देवता!

- अजित प्रसाद जैन

देवि वागीश्वरि–स्तुति

कंकेलिपल्लवविनिन्दकपाणियुग्मे !
पद्मासने! दिवसपद्म समानवक्त्रे !
जैनेन्द्र वक्त्रभवदिव्यसमस्तभाषे !
वागीश्वरि! प्रतिदिनं मम रक्ष देवि !

हे अशोक वृक्ष के सुकुमार किसलय (नवीन पत्र) को तिरस्कृत करने वाले करतल को धारण करने वाली अर्थात् सुकुमार और अरुण-लोहित कान्ति करतल शोभिते! पद्म पर विराजमाने! दिन में विकसित होने वाले कमल के समान मुख-शोभा विलसिते! भगवान जिनेन्द्र के मुख से समुत्पन्न दिव्य ध्वनि को समस्त रूप से भाषण करने मे निपुणे! हे देवि! वागीश्वरि! आप प्रतिदिन मेरी रक्षा करें!

महावीर–सन्देश

– पं. जुगल किशोर मुख्तार 'युगवीर'

यही है महावीर-सन्देश!
विपुलाचल पर दिया गया जो, प्रमुख धर्म उपदेश!!

सब जीवों को तुम अपनाओ, हर उनके दुःख क्लेश।
असद्भाव रक्खो न किसी से, हो अरि क्यों न विशेष।। यही है।।

तज एकान्त-कदाग्रह-दुर्गुण, बनो उदार विशेष।
रह प्रसन्नचित्त सदा, करो तुम मनन तत्व-उपदेश।। यही है।।

जीतो राग-द्वेष-भय-इन्द्रिय, मोह-कषाय अशेष।
धरो धैर्य, समचित्त रहो औ सुख-दुःख में सविशेष।। यही है।।

अहंकार-ममकार तजो, जो अवनतिकार विशेष।
तप-संयम में रत हो, त्यागो तृष्णा भाव अशेष।। यही है।।

'वीर' उपासक बनो सत्य के, तज मिथ्या अभिनिवेश।
विपदाओं से मत घबराओ, धरो न कोपावेश।। यही है।।

हो सबका कल्याण, भावना ऐसी रहे हमेश।
दया लोकसेवा रत चित्त हो, और न कुछ आदेश।। यही है।।

वीर–शासन का जन्मस्थान

राजगृह

- डॉ० शशिकान्त, एम० ए०, डी० आर०, पी- एच.डी.

भगवान महावीर के जीवन वृत्त से संबंधित चार स्थानों का विशेष महत्व है, यथा उनका जन्मस्थान कुण्डग्राम, केवलज्ञान-प्राप्तिस्थान जृम्भिकग्राम, देशनास्थान राजगृह और निर्वाणस्थान पावा। मध्यकालीन राजनैतिक उथल-पुथल ने केवल देशनास्थान को छोड़ कर अन्य तीन स्थानों के सम्बन्ध में भ्रांतियां उत्पन्न कर दी थीं। आधुनिक ऐतिहासिक गवेषणा ने उन विस्मृत स्थानों का अब बहुत कुछ पता लगा लिया है तदापि कुछ रूढ़ मान्यताएं सत्य की स्थापना में बाधक हो रही हैं। अब यह प्रायः निश्चित हो चुका है कि उनका जन्मस्थान बिहार प्रदेश में वर्तमान मुजफ्फरपुर जिले के बसाढ़ ग्राम का निकटवर्ती बसुकुण्ड है।[१] और पंडित नवीनचंद्र शास्त्री ने उनके केवलज्ञान-प्राप्ति स्थान को बिहार प्रदेश में मुंगेर से ५० मील दक्षिण और क्यिल स्टेशन से १८-१६ मील पर स्थित जमुई ग्राम से चीन्हने का प्रयत्न किया है।[२] प्रो० राजबलि पाण्डेय ने महावीर का निर्वाण स्थान पूर्वी उत्तर प्रदेश में देवरिया जिले में कसिया से लगभग ६ मील पूर्व-दक्षिण में पुराने कुशीनगर-वैशाली राजपथ पर स्थित वर्तमान फाजिलनगर को सूचित किया है।[३]

यहां यह उल्लेखनीय है कि महावीर के देशनास्थान के सम्बन्ध में किसी तरह की भ्रांति उत्पन्न नहीं हुई। जैन अनुश्रुति के अनुसार महावीर का प्रथम उपदेश श्रावण कृष्ण प्रतिपदा के दिन ५५७ वर्ष ईस्वी पूर्व राजगृह के विपुल पर्वत पर हुआ था। राजगृह को पटना जिले में बिहार शरीफ से १३ मील दक्षिण-पश्चिम में स्थित राजगिर से चीन्हा गया है। यहां जैन पुरातत्व यत्र-तत्र बिखरा पड़ा है। वैसे तो इस स्थान का बौद्ध और हिन्दू अनुश्रुति में भी पर्याप्त महत्व है परन्तु जैन अनुश्रुति में इसका विशेष महत्व है क्योंकि यहीं पर अंतिम तीर्थंकर महावीर ने अपना प्रथम उपदेश देकर अपने तीर्थ की स्थापना की थी और उन्हीं का तीर्थ अभी तक चल रहा है। वैसे २०वें तीर्थंकर मुनिसुव्रतनाथ की भी यह गर्भ, जन्म, तप और केवलज्ञान कल्याणकों की भूमि रही है और वासुपूज्य को छोड़कर अन्य तेईसों तीर्थंकरों के समवशरण भी यहां आये थे। अन्तिम केवली जम्बूस्वामी की निर्वाण-भूमि भी यही कही जाती है। श्रेणिक, चेलना, अभयकुमार, कुणीक, रोहिणी चोर, सेठ धन्ना तथा शालिभद्र और आचार्य वैरदेव आदि अनेक ऐतिहासिक जिन भक्तों से इसका सम्बन्ध रहा है।

प्राचीन साहित्य में इस स्थान का विभिन्न नामों से उल्लेख मिलता है यथा गिरिव्रज, पंच शैलपुर, राजगृह, कुशाग्रपुर, वसुमति और बार्हद्रथपुर। अब भी इसके दो नाम-राजगिर और पंच पहाड़ी-प्रचलित हैं। राजगृह नाम विशेष रूप से महावीर के समय में प्रचलित था जब राजा श्रेणिक के अधिनायकत्व में मगध राज्य ने उन्नति करना शुरू किया था और यह उसकी राजधानी थी। पंचशैलपुर या पंचपहाड़ी नाम इस बात का द्योतक है कि यह नगर पांच पहाड़ियों के बीच में स्थित था। वास्तव में यह एक उपत्यका में स्थित था जो चारों ओर से पहाड़ियों से घिरी हुई थी और जिसमें जाने के लिये उत्तर की ओर एक बड़ा द्वार था। यह द्वार दो पहाड़ियों के सिरों के बीच में था। पश्चिम दिशा में भी एक सकरा रास्ता था। नगर उत्तर से दक्षिण की ओर फैला हुआ था और पूर्व से पश्चिम को संकुचित था।

उपत्यका अभी भी वैसे ही वर्तमान है। इसके भीतर उत्तर की ओर से प्रवेश करते हैं। प्रवेश करते ही बाईं ओर विपुल और दाहिनी ओर वैभार पहाड़ियां मिलती हैं। इन दोनों पहाड़ियों की तलहटी में बहुत से गर्म जल के सोते हैं जिनमें प्रमुख विपुल के नीचे सूर्यकुण्ड और मखदूम कुण्ड और वैभार के नीचे सात धारा और ब्रह्म कुण्ड हैं। वैभार के नीचे से ही तपोदा या सरस्वती भी बहती है। विपुल के बाद उसी श्रृंखला में रत्नगिरि है। उसके बाद थोड़ी दूर पर छठा-गिरि शुरू होता है। इसमें बौद्ध साहित्य में विख्यात गृद्धकूट स्थित है। इसी से लगा हुआ शैलगिरि है। ये सब लगभग एक पंक्ति में हैं। छठा-शैल के सम्मुख उदयगिरि की पर्वत श्रेणी है। इनके बीच में घना जंगल है और यह प्रायः सदैव ही अगम्य रहा। उदयगिरि के सम्मुख सोनगिरि की पर्वत श्रेणी है। इन दोनों पहाड़ियों के बीच बानगंगा का दर्रा है जिसके नीचे वह छोटी-सी पहाड़ी नदी बहती है, उसके ऊपर प्राचीन काल में भी एक पुल बना हुआ था। इस दर्रे पर का दृश्य बड़ा रमणीक है। राजगिर की पहाड़ियों की चोटियों पर से जाती हुई लगभग २५-३० मील के वृत्त में फैली हुई पाषाण खण्डों से बिना चूने गारे के निर्मित प्रायः प्राग़ैऐतिहासिक दुर्ग प्राचीर भी यहां से स्पष्ट दीख पड़ती है। इसकी गणना संसार के आश्चर्यों में की जाती है। सोनगिरि के बाद वैभारगिरि है। इन दोनों के बीच से एक संकरा रास्ता गिरिडीह को जाता है। प्राचीन राजगृह नगर वर्तमान विपुल, रत्न, उदय, सोन और वैभार के बीच की घाटी में बसा हुआ था। पहाड़ियों के ये नाम आधुनिक हैं और प्राचीन साहित्य में उल्लिखित नामों से इनकी संगत बैठाना सरल नहीं है। इन नामों को प्रचलित करने का श्रेय जैनों को ही है।

घाटी में दो स्थान पुरातत्व की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं जिनका जैनधर्म से विशेष सम्बन्ध है। सोनगिरि और वैभारगिरि के बीच की घाटी में उत्तर द्वार से बानगंगा जाने वाली सड़क से थोड़ा हटकर एक बड़ा अहाता है जिसे 'मणियार मठ' कहते हैं। इसमें बहुत से मंदिरों के चिह्न मिलते हैं। बीच में कुएं के सदृश एक गोल इमारत है। इसमें चूने की कई

मूर्तियां थीं। सन् ई० १८६०-६१ में जब एलेक्जेन्डर कनिंघम ने इस स्थान को पहले पहल देखा था तो यह एक ऊंचा टीला था और उसके ऊपर १७८० ई. में निर्मित एक जैन मंदिर था। कनिंघम ने खुदाई से तीन मूर्तियां प्राप्त की थीं जिनमें से एक सप्तफण-छत्र से युक्त पार्श्वनाथ की मूर्ति थी।[४] ब्लाख ने १९०५-०६ ई० में जैन मंदिर गिरवा कर टीले की व्यवस्थित खुदाई की। इसके फलस्वरूप कुएं सदृश गोल मंदिर मिला और भी बहुत से मंदिरों के चिह्न मिले जिनमें से एक स्थल पर लगभग १ ली- २सरी शती ई. की मथुरा शैली की पाषाण मूर्ति के भग्नांश मिले जो अब दिल्ली के राष्ट्रीय संग्रहालय में हैं और जिन पर 'मणिनाग', 'भगिनी सुमागधी' 'पर्वतो विपुल' औेर 'राजा श्रेणिक' शब्द उत्कीर्ण हैं।[५] नाग-यक्षों की मान्यता के प्रमाण जैन और बौद्ध साहित्य में मिलते हैं। श्रेणिक और विपुल का उल्लेख जैन साहित्य में ही आता है और जैन अनुश्रुति में ही इनका विशेष महत्व भी है। इस मूर्ति से यह स्पष्ट है कि ई. सन् की प्रारंभिक शताब्दियों में वहां कोई जैन संस्थान स्थित था। जैन अनुश्रुति में इस स्थान की श्रेणिक की रानी चेलना के अथवा सेठ शालिभद्र के निर्माल्य कूप के रूप में भी मान्यता है।

'मणियार मठ' से थोड़ा आगे चलने पर वैभार के दक्षिण ढाल पर 'सोन भण्डार' गुफाएं हैं। ये दो गुफाएं हैं। इनमें से एक दो मंजिली थी, लेकिन ऊपर की मंजिल और छत अब गिर चुकी है। दाहिनी ओर वाली गुफा के बाहर लगभग ३-४ शती की लिपि में दो पंक्तियों का एक लेख द्वार से बाईं ओर को खुदा हुआ है। यह लेख निम्न प्रकार है:-

"निर्वाणलाभाय तपस्वियोग्ये
शुभे गुहेऽर्हत्प्रतिमाप्रतिष्ठे,
आचार्यरत्नम मुनिवैरदेवः
विमुक्तयेऽकारयदूर्ध्व तेजाः।।"

इसका तात्पर्य है कि मुनि वैरदेव ने ये गुफायें, जिनमें अर्हत् प्रतिमायें प्रतिष्ठित थीं, तपस्वि-योगी मुनियों के लिये निर्मित कराईं। और भी छोटे-छोटे लेख गुफा की दीवारों इत्यादि पर हैं, पर वे पढ़े नहीं जाते। गुफा का द्वार नीचे से ऊपर को थोड़ा सकरा होता गया है। इस गुफा के द्वार पर काले पत्थर की शिखरशैली की एक पुरानी चौमुखी मूर्ति रखी है जिसमें प्रथम चार तीर्थंकर अपने लांछनों सहित अंकित हैं। बाईं ओर वाली गुफा में दक्षिणी दीवार पर अन्दर की ओर तीर्थंकरों की ६ मूर्तियां उकेरी हुई हैं। इनमें ५ एक साथ हैं और एक अलग को है। पहली पांच में से दो खड्गासन पार्श्वनाथ की मूर्ति हैं। शेष में से एक पद्म लांछन युक्त पद्मप्रभु की है और तीन सिंह लांछन युक्त महावीर की। दाहिनी ओर वाली गुफा में भी ऐसे प्रस्तरांकन थे, परन्तु अब वे अस्पष्ट हैं।

विपुलगिरि पहला पहाड़ कहलाता है और यात्रा सामान्यतः इसी से शुरू की जाती है। पहाड़ पर जाने के लिये एक पक्का रास्ता १६४४ ई. में वीर शासन की २५००वीं जयन्ती के अवसर पर बनाया गया था। उक्त जयन्ती का एक स्मारक भी बनाया गया था। ये दोनों ही उचित देखभाल के अभाव में अब ध्वस्तप्रायः है। इस पहाड़ पर ६ आधुनिक जैन मंदिर हैं जिनमें से एक श्वेताम्बरों का है और शेष दिगम्बरों के। इनमें से एक मंदिर बिजली गिर जाने के कारण त्याग दिया गया है। ऊपर जाते हुए नं० ३ पर स्थित दिगम्बर मंदिर में चन्द्रप्रभु के प्राचीन चरण हैं। नं० ४ में महावीर की काले पत्थर की एक काफी पुरानी मूर्ति हैं। वेदीगृह के बाहर दीवार पर दो पुराने शिलापट्ट हैं जो लगभग १६वीं शती के प्रतीत होते हैं। इनमें से एक में विभिन्न पशु-पक्षियों पर आसीन कई देवियां हैं जो संभवतया विद्यादेवी हैं। शिलापट्टों पर चूने आदि के दाग पड़ गये हैं। थोड़ा सा आगे चलकर पहाड़ के उच्चतम बिन्दु पर एक पुराने जैन मंदिर के अवशेष हैं। कोई पुरानी मूर्ति वहां नहीं है। पहाड़ से सं० १४१२ की ३३ पंक्तियों की एक काव्यमय प्रशस्ति प्राप्त हुई थी, जो गांव के नाहर-भवन में संगृहीत है।

रत्नगिरि इसी पहाड़ से जाते हैं। रत्नगिरि पर तीन मंदिर हैं- मुनिसुव्रतनाथ का नया दिगम्बर मंदिर, पुराना दिगम्बर मंदिर, जिसमें महावीर के चरण हैं और श्वेताम्बर मंदिर, जिसमें चौमुखी चरण हैं।

रत्न से उतर कर जंगल में होकर सड़क पर आते हैं और वहां से उदयगिरि जाते हैं। पहाड़ पर चढ़ाई सीधी है। ऊपर एक श्वेताम्बर मंदिर है जिसके चारों कोनों पर भी चार वेदी हैं। एक पुराना छोटा-सा दिगम्बर मंदिर है जिसमें कुछ पुरानी मूर्तियां हैं, लेकिन वे विशेष महत्व की नहीं हैं। एक नया दिगम्बर मंदिर बन रहा है। दिगम्बर मंदिर से थोड़ा और ऊपर चढ़कर एक पुराने जैन मदिर का खंडहर है। यह मंदिर लगभग ८वीं शती ई. का अनुमान किया जाता है। यह चौमुखी शैली का प्रतीत होता है। बीच में गर्भगृह है जिसमें मूर्ति रखने के लिये आले बने हुए हैं और गर्भगृह के चारों ओर एक प्रदक्षिणा-पथ है।

उदय से उतरकर सोनगिरि पर जाते हैं। सोनगिरि 'श्रमणगिरि' का अपभ्रंश है और उसका प्राचीन साहित्य में ऋषिगिरि के नाम से भी उल्लेख मिलता है। उसकी चट्टानें चिकनी और फिसलनी हैं। इस पर १ श्वेताम्बर और २ दिगम्बर मंदिर हैं। श्वेताम्बर मंदिर में मूर्ति अपने प्रकृत दिगम्बर रूप में ही है। एक छोटे से कमरे में कुछ सरदलें रखी हैं, जो काफी प्राचीन हैं। इस पहाड़ से मणियार-मठ के पीछे की ओर को उतरते हैं।

अन्तिम पहाड़ वैभारगिरि है जिसे पांचवां पहाड़ भी कहते हैं। पहले तीन पहाड़ दिगम्बरों के अधिकार में हैं और बाद के दो श्वेताम्बरों के। वैभार पर जाने के लिये सात-धारा कुण्ड के पीछे से एक पक्का रास्ता बुद्ध-जयन्ती के अवसर पर बनाया गया था। सबसे

पहले एक छोटा सा श्वेताम्बर मंदिर मिलता है। उसी से थोड़ा बायीं ओर जाकर दूसरा श्वेताम्बर मंदिर श्री धन्ना-शालिभद्र का है जिसमें सेठ धन्ना और शालिभद्र की मूर्तियां हैं। वहीं से एक पगडंडी सीधे दिगम्बर मंदिर के सामने पक्के रास्ते पर ले आती है। दिगम्बर मंदिर से थोड़ा पीछे को विशाल श्वेताम्बर मंदिर है जो आदिनाथ मंदिर कहलाता है। यहीं पक्का रास्ता समाप्त हो जाता है। उससे काफी आगे जाकर एक अन्य श्वेताम्बर मंदिर गौतम स्वामी का है जिसका अब पुनर्निर्माण हो रहा है।

दिगम्बर मंदिर में सभी मूर्तियां पुरानी हैं, जिनमें से अधिकांश गुप्तकाल और पाल काल की हैं। इसी मंदिर से दाहिने हाथ थोड़ा नीचें जाने पर छह गुफायें मिलती हैं। बौद्ध अनुश्रुति की सप्तपर्णी गुफा से इन्हें चीन्हा गया है। जैन अनुश्रुति में इन्हें रोहिणी चोर की गुफा कहा गया है। इस चोर ने चौरकर्म त्यागकर मुनिधर्म अंगीकार किया था।

आदिनाथ मंदिर से थोड़ा-सा बायीं ओर हटकर एक पुराने जैन मंदिर के खंडहर हैं। ये पुरातत्व की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण हैं। इससे थोड़ा और आगे एक प्राचीन शैव-मंदिर के भी भग्नावशेष हैं।

ध्वस्त जैन मंदिर का समय लगभग ८वीं शती ई. का अनुमान किया गया है। खण्डहर पुरातत्व विभाग के संरक्षण में है। समय निश्चित करने में वहां पर प्राप्त दो मूर्तियों के लेखों की लिपि बहुत सहायक हुई है। मंदिर में पूर्व मुहाना मुख्य गर्भगृह है। उसके चारों ओर आंगन है, उसके बाद चारों ओर कोठरियों की पंक्तियां हैं। गर्भगृह और बाहर की कोठरियों में मूर्ति रखने के लिये वेदियां हैं। कोठरियों की पीछे वाली पंक्ति उत्तर की ओर आगे को निकली हुई है और उसमें तीन और कोठरियां हैं। पूर्व की दीवाल से सटा हुआ एक और कमरा है जिसमें जाने के लिये उत्तर की ओर सीढ़ियां हैं और यह मुख्य मंदिर से नीचे की सतह पर बना हुआ है। इसमें भी चारों ओर मूर्तियां रखने के लिये दीवारों में वेदिका हैं। मूर्तियां अरक्षित पड़ी हैं। बहुत-सी गायब भी हो चुकी हैं। इनमें से कुछ मूर्तियां जैन-प्रतिमा-विज्ञान की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।

मुख्य गर्भगृह में सामने की वेदी में एक पद्मासनस्थ तीर्थंकर मूर्ति है। सिंहासन पर दोनों कोनों पर एक-एक सिंह है और बीच में धर्मचक्र। मूर्ति की विशेषता पीठिका पर सिंहासन के नीचे करवट से सुखपूर्वक लेटी हुई स्त्री है। इससे भी अधिक विशेषता दिगम्बर मंदिर में विराजमान एक चौबीसी मूर्ति में है, जिसका वर्णन नीचे किया जावेगा। गांव में पुराने श्वेताम्बर मंदिर के भण्डार में एक मूर्ति के शीर्ष पर एक लेटी हुई स्त्री चित्रित है। ये अलंकरण जैन प्रतिमा-विज्ञान की दृष्टि से विशिष्ट हैं।

उक्त मूर्ति के बायीं ओर जटामुकुट विभूषित ऋषभदेव की मूर्ति है। इस पर

निम्नलिखित लेख है- 'आचार्यवसन्तनन्दिर्दधर्मोऽयम्' अर्थात् आचार्य वसन्तनंदिन् का पुण्यदान। मुख्य गर्भगृह में ही एक चन्द्रप्रभु की मूर्ति भी है।

बाहर की कोठरियों में निम्नलिखित मूर्तियां हैं:-

(१) ऋषभ की मूर्ति की एक पीठिका जिस पर दो बैल, भक्तजन और लेख 'देवय धर्मोऽयंथीरोकस्य' अंकित हैं।

(२) अश्व लांछन से युक्त संभवनाथ और शंख लांछन से युक्त नेमिनाथ की मूर्तियां।

(३) पार्श्वनाथ की पंचतीर्थी।

(४) सप्त-फण-युक्त पार्श्वनाथ की मूर्ति।

(५) पार्श्वनाथ की पद्मासनस्थ मूर्ति जिसमें पैर के तलवे बाहर की ओर हैं।

(६) पद्मासनस्थ महावीर, जिनके छत्र के दोनों पार्श्व पर हाथी पर आरूढ़ एक व्यक्ति अंकित है।

दाहिनी ओर की कोठरियों में से एक में एक मूर्ति है जिसमें एक वृक्ष के नीचे, जिसके शीर्ष पर आदि-जिन ध्यानमुद्रा में बैठे हैं, एक पुरुष और एक स्त्री ललितासन में बैठे हैं। स्त्री की गोद में उसके बायें घुटने पर एक बच्चा है।

पूर्व की दीवार से सटे हुए गर्भगृह में दो अस्पष्ट मूर्तियों के अतिरिक्त निम्नलिखित स्पष्ट मूर्तियां हैं-

(१) महावीर की मूर्ति।

(२) पंच-फण युक्त पार्श्वनाथ और उनके ऊपर तीन अन्य तीर्थंकर।

(३) काले पत्थर की खड्गासन नेमिनाथ की मूर्ति जिसका प्रभामण्डल पुष्पालंकृत है और पीठिका पर शंखद्वय हैं।

(४) पद्मासनस्थ नेमिनाथ, पीठिका पर मध्य में एक पुरुष जिसके पृष्ठ पर पुष्पालंकरण है और उसके दोनों ओर एक-एक शंख, फिर दोनों ओर एक-एक जिन और तत्पश्चात् अपनी पिछली टांगों पर खड़े और मूर्ति को अपने सिर पर रोके हुए दोनों कोनों पर एक-एक सिंह।

इनके अतिरिक्त वर्तमान दिगम्बर मंदिर में विराजमान पुरानी मूर्तियों का विवरण निम्न प्रकार है-

(१) काले पत्थर की लगभग ३ फीट ऊंची महावीर की मूर्ति-जिनेन्द्र कमलासन पर विराजमान हैं। उपर छत्र के दोनों ओर माला लिये हुए गन्धर्वद्वय चित्रित हैं। तीर्थंकर के

दोनों पार्श्व पर एक-एक चौरी-वाहक है। पीठिका पर सिंह है जिसके दोनों ओर एक-एक धर्म-चक्र है। दोनों सिरों पर भी एक-एक सिंह है जो संभवतया सिंहासन के प्रतीक स्वरूप है।

(२) नेमिनाथ के चरण।

(३) करीब सवा फुट ऊंचे काले पत्थर के पट्ट पर अभिनंदन की खड्गासन मूर्ति जिस पर वानर का लांछन है। यह पाल काल की है। बोध गया के बुद्ध मंदिर के शिखर पर जैसे अलंकरण इस मूर्ति के पट्ट के ऊर्ध्व भाग में पाये जाते हैं।

(४) चन्द्रप्रभु की संगमरमर की मूर्ति जिस पर अर्द्धचन्द्र का चिह्न है। इस पर सं० १५४८ का लेख है।

(५) काले पत्थर का एक चौबीसी पट्ट—सबसे ऊपर की पंक्ति में सात जिन हैं, उससे नीचे की पंक्ति में ८ और सबसे नीचे की पंक्ति में आठ। पीठिका के मध्य में एक पद्मासनस्थ जिन है। इस प्रकार २४ जिन अंकित हैं। पीठिका पर जिनेन्द्र के बायीं ओर एक स्त्री आराम से करवट से लेटी हुई है। उसके पैरों के पास एक सेवक बैठा है जो मालूम होता है मानो उस स्त्री के पैर दबा रहा हो। स्त्री के नीचे एक पुरुष भी करवट से सामने की ओर मुंह किये लेटा है। जिनेन्द्र के दूसरी ओर एक पुरुष उकडू बैठा है। उसके बाद एक स्त्री दो बच्चे लिए हुए है। सबसे कोने पर एक आकृति सारे पट्ट को थामे हुए सी चित्रित है।

(६) महावीर की नं. १ पर वर्णित मूर्ति की भांति। पीठिका पर चक्रों के स्थान पर उपासक हैं। गुप्तकालीन लिपि में एक लेख भी है जो स्पष्ट नहीं है।

(७) बिना लांछन के उपर्युक्त नं. ३ की शैली की मूर्ति।

(८) काले पत्थर की पद्मासन नेमिनाथ की मूर्ति—पीठिका पर मध्य में चक्र है और इसके दोनों पार्श्व पर एक-एक शंख। मूर्ति के ऊपर छत्र है। पीछे अलंकृत प्रभामण्डल है। दोनों पार्श्व पर माला लिये हुए गन्धर्व और दो हाथी के मध्य डमरू है और तीर्थंकर के दोनों ओर एक-एक चौरी वाहक है।

(९) गर्भगृह के बाहर बरामदे में द्वार के बायीं ओर एक आले में एक देवी की मूर्ति है जो एक पैर नीचे लटकाये बैठी है। इसके बायें अंक में एक बच्चा है।

पुराने राजगृह के उत्तरी द्वार के बाहर सड़क से थोड़ा हटकर एक चबूतरे पर महावीर के चरण स्थापित हैं। वर्तमान राजगिर गांव में पुराना मंदिर है जो अब श्वेताम्बरों के अधिकार में हे। इसके भंडार में कुछ प्राचीन मूर्तियां हैं जिनमें से एक का निर्देश ऊपर किया जा चुका है। इसी के पास पुरानी धर्मशाला भी है और वह भी श्वेताम्बरों के पास है।

मध्यकालीन बारादरी का स्थान इसी धर्मशाला के अंदर है और अब उसका भोजनशाला के रूप में उपयोग किया जाता है। एक श्वेताम्बर मंदिर इसी के निकट निर्मित हो रहा है।

दिगम्बरों की भी एक धर्मशाला है जिसमें एक मंदिर भी है। इसी के साथ लगे हुए विशाल बगीचे में एक और दिगम्बर मंदिर है जिसका निर्माण ई. १६२५ में एक लाख रुपये की लागत से हुआ बताया जाता है।

गांव में स्व. पूरणचन्द्र नाहर का संग्रहालय भी दर्शनीय है। इसमें पुरातात्विक सामग्री का अच्छा संग्रह है। सर्वाधिक उल्लेखनीय पूर्व उल्लिखित ३३ पंक्तियों की काव्यमय प्रशस्ति है। इसमें सं. १४१२ में विपुलगिरि पर वत्सराज और देवराज द्वारा ध्वजदण्ड मंडित पार्श्वनाथ के विशाल जिनालय की प्रतिष्ठा कराये जाने का उल्लेख है।

राजगिर जैनों का तीर्थराज रहा है। जिस काल में उसको अन्य धर्मावलंबी प्रायः विस्मृत कर चुके थे, जैन अपनाये रहे और उसके वनाच्छादित पर्वतों के शिखरों पर मंदिर बनवाते रहे। मध्यकालीन जैन साहित्य में इसका पर्याप्त उल्लेख है और वहां पर स्थित मंदिरों का सुन्दर वर्णन है। उनसे ज्ञात होता है कि विपुल, उदय और वैभार पर स्थित ध्वस्त जिनालय कम से कम १६०० ई. तक अपने असली रूप में विद्यमान थे।

वहां पर प्राप्त पुरातात्विक सामग्री का जैनों को विशेष रूप से संरक्षण करना चाहिये। पहाड़ों पर मंदिरों तक जाने वाले रास्तों को भी साफ और पक्का करा देना चाहिये। महावीर के जीवन की सर्वप्रमुख घटना से सम्बंधित इस स्थान के प्रति उनके अनुयायियों का इतना कर्तव्य तो है ही।

– (जैन संदेश के शोध विशेषांक दि. १७ जुलाई, १६५८ से साभार)

(विद्वान लेखक ने सन् १६५७ में स्वयं सभी उल्लिखित स्थलों का सर्वेक्षण कर यह लेख लिखा था)

---

१. प्रो. योगेन्द्र मिश्र– भगवान महावीर की जन्मभूमि वैशाली–चन्दाबाई अभिनंदन ग्रंथ, पृष्ठ६६६–७६।

२. भगवान महावीर का बोधिस्थान–वही पृ. ६४६–५१।

३. भगवान महावीर की निर्वाणभूमि–वर्णी अभिनंदन ग्रंथ, पृ. २११–१४।

४. आर्केलोजिकल सर्वे ऑफ इंडिया, रिपोर्ट १, पृ. २६।

५. एनुअल रिपोर्ट, आर्केलोजिकल सर्वे ऑफ इंडिया, १६०५–०६, पृ. १०३–१०४

◆◆◆◆

महावीर जीवन दर्शन : एक मूल्यांकन

- डॉ० धर्मचन्द

महावीर संन्यस्त जीवन का लम्बा अंश ध्यान, योग, तपश्चर्या के द्वारा सुख-दुःख, राग-द्वेष, अहं-आग्रह, संकल्प-विकल्प को हटाकर, मन से परे, आत्म स्वरूप के बोध में लगा। साधनाकाल में संयम, सहनशीलता, अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियों में समभाव व स्थिरता को साधा। सम्पूर्ण समाज के परिवेश का विश्लेषण कर तत्कालीन समस्याओं के समाधान का मार्ग ढूँढ़ा। उनकी साधना का मार्ग कतई आत्मदमन का मार्ग नहीं रहा। आत्म उन्नयन व सहज-स्वस्थ आनन्द का मार्ग रहा है। व्यक्तित्व के विकास की ऐसी विशिष्ट अवस्था प्राप्त की जहाँ व्यक्तित्व समस्त ग्रन्थियों से मुक्त हो जाता है, भविता शरीर व मन की सीमाओं से परे हो जाती है, साध्य और साधक एक हो जाते हैं, निश्चय और व्यवहार में भेद नहीं रहता, सम्पूर्ण सत्य के ज्ञान की क्षमता आ जाती है, अर्थात् सर्वज्ञता आ जाती है।

महावीर ने अपनी साधना का मार्ग स्वयं निर्मित किया। किसी गुरु या ग्रन्थ को मान्य नहीं किया। प्रत्येक आत्मा अद्वितीय होती है, अतः प्रत्येक आत्मा का मार्ग भी अद्वितीय ही हो सकता है। धर्म अर्थात् सत्य की साधना व शोध का मार्ग तो निश्चय ही अनुगमन का बंधा-बंधाया मार्ग नहीं हो सकता। यह तो अन्वेषण व आविष्कार का मार्ग ही हो सकता है। इसके लिए वैयक्तिक स्वतन्त्रता एवं मौलिकता तथा प्रयोगधर्मिता नितांत आवश्यक होते हैं, क्योंकि चेतना का विकास व्यक्तिक होता है। हर अनन्त के यात्री का अपना ही पथ होता है। महावीर ने अपने युग की आवश्यकता को पहचान कर, पार्श्व-परम्परा के सूत्र शेष होते हुए भी, स्वयं प्राप्त सत्य की दृष्टि से समाज की आवश्यकता के अनुरूप धर्म की व्याख्या, प्ररूपणा एवं संगठन किया। किसी भी जीवन्त मार्ग की सार्थकता मनुष्य के कल्याण और विकास के साधन में है।

महावीर ने समाज की जर्जर स्थिति को समझा। अपनी व्यक्तिक उपलब्धियों को सम्पूर्ण समाज की चेतना के विकास हेतु समर्पित कर दिया। अपनी साधना को पूरे समाज के हित में व्यापक करने हेतु धर्म के चतुर्विध संध की स्थापना की। साधना को सामूहिकता प्रदान की, क्योंकि व्यक्ति की चेतना से भिन्न समाज की चेतना, व्यक्तिगत धर्म-कर्म व समष्टिगत आकांक्षाओं में भिन्नता जीवन में भेद उत्पन्न करते हैं। जीवन-व्यवहार व धर्म-साधना को विभाजित नहीं किया जा सकता। सम्पूर्ण जीवन- व्यवहार ही धर्म-साधना बन जाना चाहिए।

❑❑❑

अहिंसा के मूर्तस्वरूप

- पद्मश्री रामनारायण उपाध्याय

महावीर स्वामी का सम्पूर्ण जीवन अहिंसा की एक सतत् साधना थी। यदि आप अहिंसा को मूर्त स्वरूप में देखना चाहें, तो महावीर स्वामी का स्मरण कीजिये। महावीर अजातशत्रु थे। जो उनका विचार मानते थे, जो न्यायी थे और जो अन्यायी थे, वे उनको सबको समान रूप से प्यार करने वाले महामानव थे। उनकी आँखों में ऐसी करुणा थी कि एक बार जब वे जंगलों में से जा रहे थे, एक महाभयंकर विषधर उन्हें काटने दौड़ा। महावीर स्वामी ने उसकी आँखों में आँख डालकर कहा- 'चण्डकौशिक सोच तू यह क्या कर रहा है ?' और वह महाभयंकर विषधर लौट गया था।

महावीर स्वामी वस्त्र नहीं पहनते थे। क्या उन्होंने अपने वस्त्रों को उतारकर त्यागने का अभिनय किया था ? वे तो इतने विदेह थे, इतने वीतराग थे कि अपने साधना-काल में जब जंगलों में भटक रहे थे, तो वृक्षों से उलझ कर उनके वस्त्र फटते चले गये और जब वे फट ही गये तो उन्हें पुनः पहनने की सुध किसे थी ? जैसे सांप अपनी केंचुल को सहज भाव से छोड़ देता है, वैसे ही वस्त्र उनसे सहज भाव से छूट गये थे।

उनके जैसे तपस्या और ज्ञान की साधना करने वाले विरले ही मिलेंगे। अट्ठाइस वर्ष की अवस्था में जब उनके माता-पिता का देहान्त हुआ, तो उन्हें लगा कि 'यह शरीर तो पानी के बुलबुले की तरह क्षणभंगुर है। अतएव इसके प्रति आसक्ति छोड़ने में तनिक भी आलस्य नहीं करना चाहिए।' तीस वर्ष की अवस्था में उन्होंने गृह त्याग की घोषणा कर दी। अपनी समस्त सम्पत्ति दीन-दुखियों में वितरित करके, गुरुजनों का आशीर्वाद लेकर एक पालकी में बैठकर वन की ओर चल दिये।

वहाँ पहुँचकर महावीर पालकी से उतरे और उन्होंने कहा, 'आप लोगों के स्नेह ने मेरे हृदय को जीत लिया है। मैं किसी स्वर्ग की कामना से, स्नेह की कमी से, क्रोध की अधिकता से, या कर्तव्यों की उपेक्षा से गृहत्याग नहीं कर रहा हूँ। असल में आत्मविजय ही मेरा लक्ष्य है। मैं अपने शरीर रूपी नौका के सहारे ही भवसागर को पार करना चाहता हूँ।' ऐसा कहकर उन्होंने अपने समस्त आभूषण उतार डाले और अपनी सहनशक्ति की परीक्षा लेते हुए अपने सुन्दर घुंघराले बालों को पांच मुट्ठियों में कसकर उखाड़ डाला। फिर समस्त सिद्धों को प्रणाम करते हुए उन्होंने कहा-- 'मैं आज से जीवन पर्यन्त समतावृत्ति से रहने का व्रत लेता हूँ', ऐसा कहकर वे ध्यानस्थ हो गये।

❑❑❑

वर्तमान युग में महावीर के उपदेशों की सार्थकता

- डॉ० प्रभाकर माचवे

हजारों वर्ष पूर्व महावीर और उनके शिष्यों ने नय-पद्धति से अपेक्षा-भंग पर गहरा विचार किया था। यदि उसे आज की समाजनीति-राजन्नीति-अर्थनीति पर लागू किया जाय तो गांधी जी कहते थे उस प्रकार से प्रत्येक व्यक्ति "स्वे-स्वे कर्मण्यभिरतः" रहकर "योगः कर्मसुकौशलम्" का अनुसरण करेगा। जन्मना जातीय ऊंच-नीचता नहीं रहेगी। वर्गों की परस्पर हित-रक्षा पंचायत और पंच पद्धति से "पंचाठ" अवार्ड और ट्रस्टी विश्वस्त संस्था से बातचीत और परस्पर-संवाद से प्राप्त की जा सकेंगी। हर छोटी-छोटी मांग के लिए परस्पर सिर फोड़ने, दंगे, रक्तपात, घेरत्व और दबाव में मानवी शक्ति का अपव्यय नहीं होगा।

विचार के क्षेत्र में, साहित्य-कला संस्कृति के क्षेत्र में भी महावीर का स्याद्वाद बहुत उपयोगी और एकमात्र सम्यक् समीक्षा-दृष्टि दे सकता है। आज हम देखते हैं कि अपनी बात को मनवाने के लिए, उसी को अंतिम सत्य मानकर, हम अन्य संभावनाओं को एकदम झुठला देते हैं।

मनोविश्लेषण शास्त्र के नये आचार्य जानते हैं कि पूर्वाग्रह एक प्रकार का मनोरोग है। उससे तो कोई भी ज्ञान आगे विकसित नहीं हो सकता। जहाँ ज्ञान नहीं है, वहाँ सृजन क्या होगा। ऐसी दिशा में महावीर के अनन्त सम्भावनाओं वाले 'स्याद्वाद' से हमें बहुत प्रेरणा मिलेगी। वह 'अव्यक्तव्यं' तक मानवी कल्पना को पहुँचाता है। अतः वह नवीनतम 'मौन में शब्द की अन्तिम परिणति वाले' विचार को बहुत पहले ही सोच चुका है।

जीवन अधिकाधिक अप्राकृतिक और असहज होता जाता है। प्रदूषण न केवल पर्यावरण में, पर विचारों के सूक्ष्मलोक में भी पहुँच चुका है। यदि मनुष्य आत्महत्या के विरुद्ध और देहात से हटकर जीना चाहता है तो उसे पुनः उसी प्राकृतिक और सहज जीवन पद्धति की ओर जाना होगा जिसकी बात महावीर ने की थी और बाद में गांधी ने उसे कृति द्वारा पुनः अधोरेखित किया था।

महावीर के उपदेशों की सबसे बड़ी सार्थकता मुझे उनके अस्तेय और अपरिग्रह की श्रेष्ठता के प्रतिपादन में लगती है। आज जो स्मगलर, मुनाफाखोर, जमाखोर, चोर-बाजारिये, कालाधन-संग्राहक व्यापारी और जल्दी से जल्दी श्रीमन्त बनने वाले समाज के ही तबके हर

प्रदेश और भाषा भाषी समाज में दिखाई देते हैं, भारत को यह जो घुन की तरह से रोग लगा है, इसका मूल है लोभ और तृष्णा। मनुष्य की एषणाओं का अन्त नहीं। उनमें ईंधन डालो अग्नि भड़कती ही जाती है। यहाँ महावीर ने जो यह कहा कि भंगुर, क्षणजीवी, असार और बेकार की चीजों से मोह मनुष्य को कहीं का नहीं रहने देगा, आज फिर से दुहराने की आवश्यकता है। जड़ और चेतन का भेद समझना होगा। पुद्गल से सब व्याप्त हैं। फिर यह मैल मन पर और तन पर ओढ़ते जाने से क्या होगा ? संवरण करना होगा 'कम्म-निज्जरा' वृत्ति ही यहाँ अन्ततः काम आयेगी।

सबसे बड़ी महावीर की देन निर्भीकता और निडर होने के क्षेत्र में है। वन, पर्वतों में अकेले घूमना, हिंस्र श्वापदों और बटमारों से न डरना इन निरंतर परिव्राजक मुनियों और यात्रियों का नित्य धर्म था। आज तो पग-पग पर लोग अनुक्षण निराधार भयाकुल लगते हैं। कई भय तो अमूर्त और निराधार होते हैं। डरने से कोई बात नहीं मिलती। 'मा भैः' के उपनिषदीय मंत्र का महावीर ने अपने जीवन में प्रत्यक्ष अनुवाद किया।

◆◆◆◆

Mahavira proclaimed in India, the message of salvation that religion is reality and not a mere convention, that salvation comes from taking refuge in the true religion and not from observing the external ceremonies of the community, that religion cannot regard any barriers between man and man as an eternal verity. Wondorous to say, this teaching rapidly overtopped the barriers of the races abiding instinct and conquered the whole country.

- Ravindranath Tagore

Lord Mahavira again brought into prominence the doctrine of Jainism. Jain religion was prevalent in India before Buddhism. In ancient time innumerable animals were butchered in sacrifice. The credit of the disappearance of the massacre from the Brahmanical religion goes to the share of Jainism.

-Lokmanya Bal Gangadher Tilak

महावीर काल के विभिन्न सम्प्रदाय

– मुनि मणिप्रभसागर जी

भगवान महावीर के समय अनेक ऐसे आचार्य हुए हैं जो अपने आपको तीर्थंकर, सर्वज्ञ, जिन कहते थे। उस समय विभिन्न परम्पराएं प्रवर्तमान थीं। मुख्य रूप से चार सम्प्रदायों का उल्लेख जैन शास्त्रों में उपलब्ध होता है।

'गोयमा ! चत्तारि समोसरणा पन्नता, तं जहा किरियावादी, अकिरियावादी, अन्नाणियवाई, वेणइसवाई।' *– भगवती सूत्र शतक ३०, उद्देश १, सूत्र १*

इसी तथ्य को पुष्ट करते हुए कई उल्लेख समववायांग सूत्र में, नंदीसूत्र आदि में भी उपलब्ध होते हैं। कुल मिलाकर चार मुख्य सम्प्रदाय- (१) क्रियावादी, (२) अक्रियावादी, (३) अज्ञानवादी, (४) विनयवादी थे। इनके भेद-प्रभेदों का वर्णन सूत्रकृतांग वृत्ति में प्राप्त होता है।

क्रियावादियों के १८० भेद, अक्रियावादियों के ८४ मत, अज्ञानवादियों के ६७ भेद तथा विनयवादियों के ३२ मत हैं। इन सबका योग ३६३ होता है। चूंकि इनका विचार अनेकान्त रहित, तथ्य रहित है, अतः इन्हें पाखण्डी भी कहा गया है।

१- क्रियावाद

सिद्धान्त के अनुयायियों का मत था कि कर्त्ता के बिना लक्षण क्रिया नहीं होती। अतः क्रिया आत्मा के साथ समवाय सम्बन्ध रखती है। जो कुछ है, वह क्रिया ही है। भाव को मुख्यता नहीं देकर उसे अन्तर्निहित माना है। ये क्रियावादी जीवादि नौ पदार्थों को एकान्त अस्तिस्वरूप से मानते हैं। प्रवचन सारोद्धार की इन गाथाओं में इनके १८० भेद बताये गये हैं।

जीव, अजीव, आस्रव, बंध, निर्जरा, पुण्य, अपुण्य और मोक्ष इस प्रकार नौ पदार्थ हैं। हर पदार्थ के काल, ईश्वर, आत्मा, नियति और स्वभाव भेद माने हैं। ये नित्य और अनित्य भेद से दश हुए। फिर स्वतः और परतः इस प्रकार इन दो से गुणा करने पर बीस भेद होते हैं। इसी प्रकार हर पदार्थ के बीस भेद होने पर बीस गुणा नौ, कुल एक सौ अस्सी भेद होते हैं।

२- अक्रियावादी

इनकी मान्यता है कि क्रिया पुण्यादि रूप नहीं है। क्योंकि क्रिया स्थिर पदार्थ होती है जबकि इस जगत में कोई स्थिर पदार्थ नहीं है। सभी पदार्थ विनाशधर्मा हैं। ये आत्मा को

नहीं मानते। ये सात पदार्थ मानते हैं। जीव, अजीव, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष इन सात पदार्थों के स्व और पर तथा उनके काल, ईश्वर, आत्मा, नियति, स्वभाव और यदृच्छा इस प्रकार भेद करने से कुल ८४ भेद होते हैं।

३- अज्ञानवाद

इनका मानना है कि इस जगत में अज्ञान ही सुख और शांति का आधार है। ज्ञान तो झगड़े का और अशांति का कारण है। ज्ञान से ही भिन्न-भिन्न मतों और उपद्रवों की उत्पत्ति होती है। अतः ज्ञान की कोई आवयकता नहीं है। इनके कुल ६७ भेद शास्त्रों में बतलाये गये हैं।

जीव, अजीव, आस्रव, संवर, निर्जरा, पुण्य, अपुण्य, बंध और मोक्ष, इन नौ पदार्थों के सत्व, असत्व, सदसत्व, अवाच्यत्व, सदवाच्यत्व, असदवाच्यत्व, सदसदवाच्यत्व इस प्रकार सात प्रकार से कुल ६३ भेद हुए तथा उत्पत्ति के सत्वादि और चार विकल्प होने से कुल ६७ भेद होते हैं।

४- विनयवाद

ये जगत में मात्र विनय को मानते हैं। न तो इनका कोई वेश होता है, न शास्त्र। ये केवल मोक्ष मानते हैं। इनके ३२ भेद माने जाते हैं।

सुर, राजा, यति, ज्ञाति, स्थविर, अधम, माता और पिता इन आठों की मन से, वचन से, काया से और देश काल के अनुसार उचित दानादि से विनय करना। इस प्रकार ३२ भेद होते हैं।

इन चार प्रमुख मतों के अलावा भगवान महावीर के समय में और कई सिद्धान्त, मत मतान्तर प्रतिष्ठत हो रहे थे और उनके धर्माचार्य अपने-अपने सिद्धान्तों का प्रचार करते थे।

निशीथ चूर्णि में आजीवग, ईसरमत, उलूग, कपिलमत, कविल, कावाल, कावलिय, चरग, तच्चन्निय, परिव्वायग, पंडरंग, बोद्रित, भिच्छुग, भिक्खु, रत्तपड, वेद, सक्क, सरक्ख, सुतिवादी, सेयवड, सेयभिक्खु, शाक्यमत, हड्डसरक्ख आदि कई मतवादियों के नामोल्लेख मिलते हैं।

इनके अलावा कुछ और सम्प्रदायों का उल्लेख शास्त्रों तथा विभिन्न प्रकरणों में उपलब्ध होता है।

१- बौद्ध सम्प्रदाय

इस मत का प्रवर्तन भगवान बुद्ध ने किया था। बौद्धों के दो विभागों में से एक तो

इस जगत का निर्माण रूप, वेदना, विज्ञान, संज्ञा और संस्कार इन पांचों स्कन्धों से मानता है। दूसरा पृथ्वी धातु, जल धातु, तेज धातु, वायु धातु इन चार धातुओं को ही जगत का धारक मानते हैं। आत्मा को दोनों ही मत वाले नहीं मानते।

२- आजीवक सम्प्रदाय

सूत्रकृतांग आदि कई सूत्रों में इस सम्प्रदाय का उल्लेख मिलता है। मक्खलिपुत्त गोशालक ने इस मत का प्रवर्तन किया था। कल्पसूत्र में इस मत के प्रारंभ काल का उल्लेख है। इसे नियतिवाद भी कहते हैं। इस मत की मान्यता है कि सुख-दुःख में जीव निमित्त नहीं है। वह कर्त्ता नहीं है। दैवनियत ही होता है। पुरुषार्थ का कोई अस्तित्व नहीं है। पुरुषार्थ जो दिखाई देता है, वह नियति का हिस्सा मात्र है।

३- उच्छेदवाद

अजित केसकम्बली इस मत के कर्त्ता माने जाते हैं। इसे जड़वाद तथा नास्तिकवाद भी कह सकते हैं। इनकी मान्यता थी कि पुण्य, पाप, दान, यज्ञ, हवन आदि सब कुछ व्यर्थ है। इनका कोई फल नहीं है। न अच्छे का फल अच्छा है, न बुरे का फल बुरा है। न यह लोक है, न परलोक ! चार भूतों से मिलकर मनुष्य बना है। उसके मरने पर चारों धातुओं से बना यह शरीर अपनी-अपनी धातु में समा जाता है।

४- अन्योन्यवाद

आचार्य प्रक्रुद्ध कात्यायन इस वाद के प्रमुख व्याख्याता थे। ये पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, सुख, दुख तथा जीवन इस प्रकार सात पदार्थों को मान्यता देते थे। उनका कहना था कि सातों पदार्थ न किसी ने बनाए, न किये, न करवाये, ये बंधय, कूटस्थ तथा खम्बे के समान अचल हैं। इस वाद को अकृततावाद भी कहा जाता है।

५- विक्षेपवाद

आचार्य बेलट्ठिपुत्त द्वारा प्रचलित इस वाद को अनश्चिततावाद भी कहा है। उनका कहना है कि परलोक है या नहीं, यह मैं नहीं समझता ! आत्मा है या नहीं, यह भी मालूम नहीं ! परलोक है; यह मैं नहीं मानता तथा परलोक नहीं है, यह भी मैं नहीं मानता ! अच्छे या बुरे कर्मों का फल मिलता है, यह मैं नहीं मानता और नहीं मिलता है, यह भी मैं नहीं मानता। वह होता भी है, या नहीं होता है, नहीं मानता। इस प्रकार हर बात में अनिश्चय का दर्शन इस दर्शन का सिद्धान्त है।

६- अत्तुक्कोसिय

इस सम्प्रदाय के साधु बड़े स्वाभिमानी होते थे। अहंकार के साथ ही उनकी हर क्रिया संपादित होती थी।

७- भूइकम्मिय

इस मत के लोग भस्म द्वारा दूसरों की ज्वर आदि व्याधियों का उपचार किया करते थे।

८- चण्डिदेवग

ये लोग अपने पास एक छोटी तलवार धार्मिक प्रतीक के रूप में अपने पास में रखते थे।

९- दगसोयरिय

इनका समुदाय शारीरिक शुद्धता पर ही जोर देता था। यदि स्नान के बाद इन्हें कोई छू लेता था तो ये ६४ बार वापस स्नान करते थे।

१०- धम्मचिंतक

इस समुदाय के लोग अपना पूरा समय चिंतन में ही व्यतीत करते थे।

११- गीयरइ

अपने जीवन का अधिक से अधिक समय गीत संगीत को ही देतें थे। उसी को धर्म मानकर तन्मय रहते थे।

१२- गोअम

इस समुदाय के लोग बैलों को कौड़ियों आदि से सुन्दर श्रृंगार से सुसज्जित करके भ्रमण करते हुए अपनी आजीविका का उपार्जन करते थे। भोजन में चावल ही अधिकतर ग्रहण करते थे।

१३- कम्मारभिक्खु

अपने आराध्य गुरु की प्रतिमा लेकर गांव-गांव घूमते थे और इस प्रकार दान द्वारा प्राप्त द्रव्य से अपनी आजीविका चलाते थे।

१४- कुच्चिय

लम्बी दाढ़ी और मूंछ रखने के कारण ये कुच्चिय कहलाते थे। अधिकतर समय बालों को संवारने में व्यतीत होता था।

१५- पिण्डोलग

इस समुदाय के लोग शारीरिक शुद्धता में विश्वास नहीं रखते थे। अत्यधिक मैले रहते थे। शरीर में जुएं रेंगती रहती थीं। दुर्गंध की तो सीमा ही नहीं होती थी।

१६- परपरिवाइय

अन्य समुदाय के साधुजनों की निन्दा करने के कारण इनका नाम परपरिवाइय पड़ा

था। दिनभर ये अन्यों की त्रुटियां खोजते रहते और फिर निन्दा विकथा करते रहते।

१७- ससरक्ख

ये नग्न रहते थे। हाथ में ही भोजन करते थे। इन्द्रजाल, जादू विद्या में निपुण ये लोग जनता को अपनी विद्या द्वारा आकर्षित कर आजीविका का निर्वाह करते थे।

१८- वणीमग

अत्यधिक सुस्वादु भोजन के अतिलोभी इस समुदाय के लोग भिक्षावृत्ति से अपना जीवन यापन करते थे।

१९- वारिभद्रक

इस संगठन के लोग काई-शैवाल तथा पानी का ही भोजन किया करते थे।

२०- वारिखल

भोजन करने के पात्र को भोजन करने के उपरान्त बारह बार मिट्टी से रगड़-रगड़ कर धोने के कारण इनका नाम वारिखल पड़ा था।

विभिन्न मतों और विचारधाराओं के चलते परमात्मा महावीर ने पंच महाव्रतों का धर्म और अहिंसा, अनेकांत और अपरिग्रह के सिद्धान्तों की उद्घोषणा की। जनता ने परमात्मा महावीर के सत्य को अहोभाव से स्वीकार करते हुए अपने आचरण को इन सिद्धान्तों से जोड़ा।

भगवान महावीर ने इन सभी सिद्धान्तों का यथासंभव समन्वय किया। उन्होंने वस्तु के स्वभाव को धर्म कहा। उस काल की बाह्याचार से जुड़ी परम्पराओं के मध्य परमात्मा के इस उद्घोष ने तपती धरती पर बरसात की फुहार का काम किया। लाखों लोगों ने इस सत्य धर्म को स्वीकार कर आत्म कल्याण साधने का पुरुषार्थ किया।

◆◆◆◆

महावीर वाणी

हिंसा पावं तिमदो, दयापहाणो जहो धम्मो।
जह ते ण पियं दुक्खं, तहेव तेसिंपि जाण जीवाणं।।

हिंसा पाप है, क्योंकि दया सब धर्मों में प्रधान है। जिस प्रकार तुम्हें दुख प्रिय नहीं है, उसी प्रकार अन्य जीवों को भी दुख प्रिय नहीं है यह जानो।

महावीर जन्म जयन्ती कार्यक्रम

इसकी सार्थकता कैसे हो ?

– डॉ० चीरंजीलाल बगड़ा

दिगम्बर जैन समाज की वर्तमान स्थिति का जब हम सूक्ष्मता से आकलन करते हैं तो ज्ञात होता है कि हमारा यह समाज संख्या में छोटा होते हुए भी बेहद शिक्षित, सम्पन्न एवं धर्मप्रिय समाज है जो आज भी नित्य देवदर्शन, तीर्थ-वंदना, दान, शास्त्र प्रकाशन, मुनि भक्ति एवं दिवा भोजी आदि अनेक महत्वपूर्ण बिंदुओं के कारण अन्य समाज से तुलनात्मक दृष्टि से बहुत बेहतर एवं महत्वपूर्ण स्थिति में है। परन्तु इतना सब होते हुए भी समाज आज अनेक प्रकार के गंभीर विकारों से ग्रस्त है, जिसे मात्र काल-दोष कहकर टालना कभी भी समझदारी नहीं मानी जा सकती है। हमारा सौभाग्य है कि हमारी इस पीढ़ी ने भगवान महावीर का २५००वां निर्वाण महोत्सव मनाया एवं अब उन्हीं की २६००वीं जन्म जयंती भी विश्व स्तर पर मनाने का अवसर प्राप्त कर रहे हैं।

जैन धर्म अध्यात्म धर्म है। भगवान महावीर अपने समय में क्रियाकाण्ड को ही धर्म मानने वाले वैदिक धर्म के विरुद्ध क्रांति का बिगुल बजाने वाले मसीहा के तौर पर इतिहास प्रसिद्ध हैं। क्रिया माध्यम है प्रधान भाव है। क्रिया के माध्यम से क्रमशः भावों का निर्मलीकरण करना हमारा ध्येय है। क्रोध, मान, माया और लोभ इन चार कषायों के माध्यम से हमारी आत्मा निरंतर कृश होकर, बंध कर चौरासी लाख योनियों में भ्रमण कर रही है तथा इन कषायों को मंद से मंदतर करना ही धर्म का मूल तत्व है।

अब हम पुनः अपने मूल विषय **समाज की स्थिति का आकलन** पर लौटते हैं तो बंधुओं, मेरी तुच्छ बुद्धि से वर्तमान की समस्त विकृतियों की जननी है हमारा मान एवं लोभ कषाय का अतिरेक भाव। आज सर्वत्र, चाहे साधु हो या श्रावक, मान कषाय के चलते अहम् की टकराहट प्रमुख है। तिल तुष मात्र परिग्रह का त्याग कर जिनमुद्रा को स्वीकार कर चुके वीतराग दिगम्बर साधु तक में जब हम एक दूसरे साधु के प्रति सामान्य वात्सल्य का भी अभाव देखते हैं, अहम पुष्टि की अत्यधिक भूख देखते हैं, तो साधारण श्रावक की तो बात ही क्या कहें ? पहले समाज में पंच परम्परा थी, समाज प्रमुख होते थे, समाज में अनुशासन था, समाज बहिष्कार का भय था, परंतु जबसे नवधनिकों ने समाज में अर्थ प्रमुखता के चलते अनर्थ करना शुरू किया, समाज व्यवस्था चरमराने लगी और इसमें आग में घी का काम किया हमारी लोभ कषाय ने। नए मंच, नए मंदिर, नई संस्था, नई पत्र-पत्रिका आदि के माध्यम से इन नव-धनिकों ने साधुओं को बांटना शुरू किया और एक-एक कर साधु

और समाज इन नव-धनिकों के गिरफ्त में आता गया, अनुशासन नाम ही समाप्त हो गया। अपनी-अपनी डफली, अपना-अपना राग के इस दौर में मान कषाय और लोभ कषाय समाज में अपना नंगा तांडव नृत्य कर रही हैं। अनुशासन विहीन एवं नेतृत्व हीन समाज की जो दशा और दिशा होनी चाहिए, वह स्थिति है आज धर्म के चतुर्विध संघ की। भौतिक युग के बावजूद कष्ट साध्य चर्या वाले हमारे दिगम्बर श्रमण परम्परा में हालांकि संख्यात्मक वृद्धि तो दृष्टिगोचर हो रही है, परंतु गुणात्मक ह्रास के कारण एवं उक्त दो कषायों की बहुलता के कारण वास्तविक धर्म के स्वरूप के दर्शन दुर्लभ हो गए हैं। आज मात्र व्यक्ति प्रभावना है सच्ची धर्म-प्रभावना का सर्वथा अभाव है, जबकि व्यक्ति प्रभावना जैनधर्म में एकदम गौण है।

आज समाज की अधिकांश धार्मिक सामाजिक क्रिया भी इन्हीं पापों के केंद्र बिंदु के चारों ओर सीमित है तब साधारण व्यक्तिगत क्रिया की क्या समीक्षा करें। **लोभ पाप को बाप बखानों** के अनुसार यही हमारे अधिकांश विकृतियों की जनक है तथा मान कषाय जन्य अहम एवं व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा इसके सहचर। पंचकल्याणक हो, विधान हो, मस्तकाभिषेक हो, साधु का चातुर्मास हो और तो और जिनेंद्र देव की नित्य पूजा तक इसी ध्येय की प्राप्ति हेतु समर्पित है। देखिए न कलकत्ता जैसी महानगरी के दिल में बसे बड़ा मंदिर तक में जहाँ पहले से लाखों रुपयों की बैंक डिपाजिट है वहाँ भी नित्य पूजन हेतु ध्रौव्य कोष की स्थापना कर लोगों से रुपये इकट्ठे किए जा रहे हैं। इसके दो ही कारण हो सकते हैं कि या तो हमें भविष्य हेतु आत्मविश्वास नहीं है कि समाज पूजा भी कर पायेगी या नहीं अथवा फिर मात्र धन-संग्रह का एक नया बहाना है।

वर्तमान के हमारे पुरुषार्थ को क्या लकवा मार गया है जो हम मंदिर के नाम पर भी लोभ कषाय का संवरण नहीं कर पा रहे हैं ? यह मात्र एक उदाहरण के बतौर लिखा है, कमोवेश ऐसी ही स्थिति सर्वत्र दिखाई पड़ रही है। एक तरफ हजारों मंदिर-योजनाएं धनाभाव से पीड़ित हैं, दूसरी तरफ समाज का अक्षय भण्डार वीतराग प्रभु के नाम पर इन ट्रस्टियों के संरक्षण में निरुद्देश्य दबा पड़ा है। अगर मात्र हमारे भाव शुद्ध हो जावें और क्षेत्र- मंदिर-ट्रस्ट में पड़े धन का ही हम सदुपयोग कर लें, तो निश्चित जानिये, पूरे दिगम्बर जैन समाज का तो कायाकल्प कर ही सकते हैं, देश में भी एक बड़ा बदलाव ला पाने में सक्षम हो सकते हैं और यह भगवान महावीर के उपदेश का एक बेहद सकारात्मक प्रयोग होगा, जिसे इतिहास शताब्दियों तक स्मरण करेगी वरना हमारी उत्सव प्रिय समाज जैसा करती आई है, करेगी और हम एक हाथ आए बेहद महत्वपूर्ण अवसर को यूं ही खो देने के अपराधी बने रहेंगे।

अब इसके लिए करणीय कुछ कदमों पर भी एक दृष्टि डालते हैं-

(१) **समाज-व्यवस्थाः** हमें समाज में पंच प्रथा को पुनः लौटाना होगा। प्राथमिक तौर

पर हम सब जगह समाज का एक प्रतिनिधि अध्यक्ष/मंत्री तथा ५-७ सदस्यीय समिति का गठन करें। बड़ी समाज हो वहाँ हर मंदिर- संस्था के प्रतिनिधियों को लेकर एक नगर की केंद्रीय समिति बनाकर समन्वय स्थापित करने की दिशा में पहल स्थापित करें।

(२) **मन्दिर-समन्वयः** पूरे देश में फैले सब मंदिरों का, क्षेत्रों का, न्यासों का शीघ्र ही एक फेडरेशन बने तथा इन सबके बीच समन्वय स्थापित हो। एक दूसरे क्षेत्रों को गोद लेने की परम्परा का क्षमतानुसार विकास हो, अनुत्पादक सम्पदा-धन-सामग्री आदि को धार्मिक सामाजिक उपयोगितानुसार उनका वैज्ञानिक पद्धति से आकलन हो तथा इस सबंध में योजना बने। हर मंदिर से एक योजनाबद्ध तरीके से कुछ वार्षिक शुल्क इकट्ठा कर एक विशाल केन्द्रीय सुरक्षाकोष भी बनना चाहिए।

(३) **जैन न्याय आयोगः** आज समाज की शक्ति का एक बहुत बड़ा अंश कोर्ट कचहरी, थाना पुलिस में ही खर्च हो रहा है। लाखों-करोड़ों रुपये वर्ष दर वर्ष इस मंद पर दुरुपयोग करने का समाज अक्षम्य अपराध कर रही है। आज समाज में अवकाश प्राप्त न्यायाधीशों की कोई कमी नहीं है, आई.ए.एस., आई.पी.एस. अधिकारियों की कोई कमी नहीं है। हमें एक जैन न्याय आयोग का गठन करना चाहिए तथा कोई भी समाज के बीच का आपसी विवाद पहले हमें इस आयोग से सुलटाने का प्रयास करना चाहिए। बाद में ही सरकारी दरवाजा खटखटाना चाहिए। मैं समझता हूँ आधे से अधिक विवादों को हम इस आयोग के माध्यम से शीघ्र एवं मितव्ययिता से सुलटा सकेंगे।

(४) **नारी शक्ति का उपयोग :** सुखद है आज जैन महिलाएं शिक्षित एवं प्रबुद्ध हैं। परिवार में धार्मिक क्रिया के पीछे महिलाओं की प्रेरणा ही मुख्य रहती है। बच्चों को धार्मिक संस्कार देने का कार्य भी ये महिलाएं बखूबी निभा सकती हैं। हमें समाज की इस ५० प्रतिशत ऊर्जा का सकारात्मक उपयोग करने की दिशा में गम्भीर पहल करनी चाहिए।

(५) **श्रमण-अनुशासन :** आज अधिकांश सामाजिक विकृतियों/विवादों के साथ साधु वर्ग का नाम जुड़ा है। उनमें आपसी वात्सल्य-भाव का सर्वथा अभाव स्पष्ट देखा जा सकता है। श्रमण वर्ग में भी अनुशासन एवं सामाजिक नियंत्रण की दिशा में कुछ सार्थक प्रयास होना चाहिए तथा इस दिशा में सबको मिल बैठकर कुछ ठोस कदम उठाना आज वक्त की महती आवश्यकता है। **प्रश्न है बिल्ली के गले में घंटी बांधे कौन ? आज तो बिल्ली को ही हमने दूध की रखवाली का जिम्मा सौंप रखा है ?**

बंधुओं, बीज डालने के पूर्व भूमि शुद्धि आवश्यक है। भगवान महावीर की २६००वीं जन्म जयन्ती पर वास्तव में यदि हम कुछ ठोस दूरगामी प्रभाव वाले कदम उठाने की पहल करते हैं, तभी हम अहिंसा, अनेकान्त, अपरिग्रह- वाद के महावीर के सिद्धांतों को जनमानस तक पहुंचा पाने में सक्षम होंगे।

- ४६, स्ट्रॉण्ड रोड, ३ तल्ला, कलकत्ता-७०००७

तीर्थंकर महावीर

– डॉ० परमानन्द जड़िया

तप-त्याग मूर्ति ! हे बल-स्फूर्ति।
त्रिशलानन्दन ! हे वर्धमान।
त्यागा वैभव-सुख, राज-पाट,
मिल गया परम पद मोक्ष ज्ञान।।
तुम मौन व्रती, ज्ञानी प्रवीण,
करुणा, ममता के दिव्य स्रोत।
तुम महावीर निर्ग्रन्थ सन्त,
दुस्तर भवाब्धि के महापोत।।
तुम दिव्य दिगम्बर, कच-विहीन
तुम सत्य सनातन, चिर नवीन।
तुम समाधिस्थ तप-ध्यान लीन,
कर लिया विश्व अपने अधीन।।
तुम सत्य-अहिंसा के प्रतीक,
समता-समरसता के पयोद।
तुम पूर्ण ब्रह्म, अक्षय अनन्त,
बांटा जग को अमृत समोद।।
तुम ऊँच-नीच के शिखर मध्य,
चमके नभ में दिनकर समान।
तुम शैलराट, तुम सप्त सिन्धु,
तुम महामहिम से भी महान।।
हे तीर्थंकर ! हे शिवशंकर।
पी गये विश्व-हित कालकूट।
रोका उत्पीड़न, अनय, दम्भ,
पाखण्ड लूट को दी न छूट।।
तुमने न दिया तन को विराम,
दे गये एक दर्शन ललाम।
तुमको शत वन्दन, शत प्रणाम,
हे निर्विकार ! हे पूर्णकाम।।

महावीर-वैराग्य

राज्य रमा यौवन वैभव सबसे विराग ले भारी
विश्व प्रेम का पाठ पढ़ाने चले वीर व्रत धारी।
उसने कोरे कर्म-कांड का जग में होता तांडव देखा,
धर्म नाम पर अत्याचारों का नंगा नर्तन देखा,
हवन कुंड में प्राण दे रहे पशुओं का क्रन्दन देखा,
उनकी बहती रक्तधार से यज्ञों का तर्पण देखा।
देखा केवल छू जाने पर शूद्रों पर कोड़े लगवाते
वेद वाक्य सुन लेने पर कानों में शीशा भरवाते।
देखा उसने अपमानित और लांछित मातृ शक्ति सारी
असहारा बंधनों में जकड़ी जड़वत अधिकार हीन नारी।

हाहाकार कर उठा प्रभु का हृदय देख यों जग जीवन
चलो मुक्ति का मार्ग खोजने बोल उठा यों उनका मन।
ऐसी मुक्ति मिल सके जिससे सब जीवों को हो शांति अपार
दुख का लेश न रहे कहीं भी, सत्य प्रेम मय हो संसार।
विप्लव मय प्रभु के उर में आने लगा विमल वैराग्य
विश्व-शांति हित अहो वीर ने उस क्षण सब कुछ दिया त्याग।

बोल उठा वह तरुण तपस्वी, मेरे ममता-मोह विदा दो,
राग विदा दो, द्वेष विदा दो, काम विदा दो, द्रोह विदा दो,
राज्य प्रासाद रंगशालाएं क्रीड़ामय उपवन-मधुवन
आज विदा तुमसे लेता है जग कल्याण हेतु मेरा मन।
अभिमानों के प्रेरक जितने भाव आज वे सब ही क्षय हों
मेरा मन हो शान्त जगत की शांति-साधना में ही लय हो।

यह कहकर चल दिये वीर जीवन की शोध लगाने,
स्वयं छूटकर भव बंधन से जग को लगे छुड़ाने,
गूंजी फिर जग के कण-कण में प्रभु की व्यापक वाणी
एक बार फिर सुखी हो उठे जग के व्याकुल प्राणी।
लगी नाचने प्रकृति खुशी से हंसने लगा चन्द्र नभ में।
प्रभु जीवन की कीर्ति-कौमुदी फैली जल, थल अरु नभ में।।

- डॉ. महावीर प्रसाद जैन 'प्रशान्त'
डी-११/६, राजेन्द्र नगर, लखनऊ- २२६००४

परिग्रहवान मुनि मोक्षमार्गी नहीं

- डॉ० श्रेयांसकुमार जैन

आत्म विकास का प्रबलतम अवरोधक परिग्रह सर्व पापों का मूल है। आत्मा का सबसे बड़ा बन्धन परिग्रह है। इसके जाल में बंधा हुआ आत्मा विविध पापमय प्रवृत्तियां करता है। आचार्य उमास्वामी ने इसकी परिभाषा करते हुए लिखा है- 'मूर्च्छा भाव परिग्रह है।'[1] मूर्च्छा/आसक्ति ही पापों को उत्पन्न कराने में निमित्त होती है। इसी के वशीभूत होकर हिंसा, झूठ, चौर्यकर्म, आदि की प्रवृत्ति होती है। मूर्च्छा/परिग्रह से क्रोध, मान, माया, लोभ चार कषाय होती हैं। जहां ये क्रोधादि चार कषाय होती हैं, वहां परिग्रह आदि पाप भी अवश्य होता है। पापों के केन्द्रभूत परिग्रह का सम्बन्ध मुनि से जोड़ना या मुनि के साथ परिग्रहवान विशेषण लगाना एक विडम्बना ही कही जायेगी क्योंकि मुनि आरंभ परिग्रह से रहित निर्ग्रन्थ वीतरागी होते हैं।

आगम[2] में साधु (मुनि) के लिए सिंह के समान पराक्रमी, हाथी के समान स्वाभिमानी, उन्नत बैल के समान भद्रप्रकृति, मृग के समान सरल, पशुवत् निरीह गोचरीवृत्ति वाला, पवनवत् निसंग सर्वत्र विचरण करने वाला, सूर्यवत् तेजस्वी या सकल तत्व प्रकाशक, सागरवत् गम्भीर, मेरुसम अकम्प, चंद्रसम शान्तिदायक, मणिवत् ज्ञानप्रभा पुंज युक्त, पृथ्वीवत् सहनशील, सर्पवत् अनियत-वसतिका में रहने वाला, आकाशवत् निरालम्बी या निर्लेप तथा सदा परमपद का अन्वेषण करने वाला कहा है।

उक्त गुणों को प्राप्त न कर मात्र नग्नता स्वीकार कर सांसारिक विषयाभिलाषा पूर्ण करने वाले मुनियों को आचार्य कुन्दकुन्द ने सावधान किया है कि सांसारिक विषयों की पूर्ति का साधन परिग्रह महा दुःखदायी है। मोक्षमार्ग से च्युत करने वाला है। मात्र नग्नता श्रमणत्व नहीं है। आचार्य कुन्दकुन्द ने मुनित्व/श्रमणत्व के लिए जो व्यवस्था दी है, वह इस प्रकार है:-

णिग्गंथमोहमुक्का वावीस परीसहा जियकसाया।
पावारंभविमुक्का ते गहिया मोक्खमग्गम्मि।।८०।। मो० पाहुड़।

परिग्रहविहीन, स्वजन-परिजन एवं पर पदार्थों के मोह से रहित २२ परीषहों को सहने वाले क्रोधादि कषायों के विजेता, सभी प्रकार के पाप और आरंभ से रहित मुनि मोक्षमार्ग के अधिकारी हैं।

जो मोक्षमार्ग से च्युत हैं। अन्तरंग-बहिरंग मूर्च्छा भाव से युक्त परिग्रह के प्रति जिनका ममत्व भाव प्रकट है ऐसे मुनि की अपेक्षा से परिग्रहवान विशेषण मुनि के साथ जोड़ा गया है।

आचार्य कुन्दकुन्द ने स्पष्ट कहा है कि जो सर्वज्ञदेव के शास्त्र का ज्ञाता है, उनके द्वारा प्रतिपादित मुनिचर्या का पालन करता है वह संसार सागर से शीघ्र पार हो जाता है तथा जो मुनि असूत्र (आगम विरुद्ध) प्रवृत्ति करता है, वह चतुर्गति रूप संसार में गुम हो जाता

है।[३] जिनागम में निर्ग्रन्थ मुद्रा को ही मोक्षमार्गी माना है।[४] और निर्ग्रन्थ (परिग्रहरहित) को वंदनीय कहा है।[५] किन्तु जो जिनमुद्रा धारण कर परिग्रहण रूप पाप प्रवृत्ति करते हैं, स्वच्छन्द विहरण करते हैं उनके लिए सूत्रपाहुड में कहा है:-

उक्किट्ठसीह चरियं बहुपरियम्मो य गुरुयभारो य।

जो विहरइ सच्छंदं पावं गच्छेदि होदि मिच्छत्तं।।९।।

जो मुनि सिंह के समान निर्भर रहकर उत्कृष्ट चारित्र धारण करते हैं, अनेक प्रकार के परिकर्म व्रत उपवास आदि करते हैं तथा आचार्य आदि के पद का गुरुतर भार संभालते हैं, परन्तु स्वच्छन्द प्रवृत्ति करते हैं, आगम की आज्ञा का उल्लंघन करके मनचाही प्रवृत्ति करते हैं, वे पाप को प्राप्त होते हैं एवं मिथ्यादृष्टि कहलाते हैं।

परिग्रह से काम वांछा होती है। काम से क्रोध, क्रोध से हिंसा, हिंसा से पाप और पाप से नरकगति होती है। इस नरकगति में वचनों से अगोचर दुःख होता है। इस प्रकार दुःख मूल परिग्रह सिद्ध हुआ। **इस दुःख के मूलभूत परिग्रह के फल को जानने वाले और इसके दुष्परिणामों को व्याख्यानों के माध्यम से प्रतिपादित करने वाले कुछेक मुनि इसी परिग्रह में लिप्त होकर सम्यग्दर्शन को तो मलिन कर ही रहे हैं साथ में अपने चारित्र से भी पतित हो रहे हैं।**

मुनि के लिए असंयमभाव का प्रबल निमित्त परिग्रह है। यद्यपि मुनि संयम साधना के विचार से किसी स्थान विशेष की अपेक्षा करता है तथापि उसके प्रति ममत्व भाव से रहित होता है। मूलाचार में कहा है-

वसधिसु अप्पडिबद्धा ण ते ममत्तिं करेंति वसदीसु।

सुण्णागारमसाणे वसंति ते वीरवसदीसु।।२३।। मूलाचार

मुनिराज किसी गुफा में निवास करते हैं, तो भी यह गुफा इन मुनिराज की है और यह मेरी है, इस रूप में उससे सम्बन्ध नहीं रखते, उससे प्रतिबद्ध रहते हैं और उस पर ममत्व भी नहीं करते। वे शून्य घरों में अथवा श्मशान में वीरों के समान रहते हैं।

वर्तमान में विपरीत स्थिति हो रही है। अब कुछ मुनि जहां रहना चाहते हैं, उस पर अपना नाम/अधिकार चाहते हैं। **तीर्थों पर अपने नाम से सन्त निवास बनवाने की इच्छा रखते हैं, उसमें समस्त सुख-सुविधाओं की अपेक्षा की जा रही है, जिसका परिणाम है कि जहां-तहां आश्रम/मठ/संस्था/संस्थान आदि के निर्माण कराने की प्रेरणा मुनि/त्यागी/व्रती आदि समाज को दे रहे हैं।**

आस्था से जकड़ी समाज मुनि/आर्यिका/त्यागी/व्रती के कहने पर शक्ति के अनुसार अर्थ सहयोग करती है और उनकी बलवती इच्छाओं को पूर्ण करना अपना कर्तव्य समझती है। यदि कोई प्रबुद्ध समाज के मध्य कहता है कि अपरिग्रही निर्ग्रन्थ मुनि को परिग्रही बनाकर धर्म की हानि क्यों की जा रही है तो इसका उत्तर इस वणिक बुद्धि सम्पन्न चतुर समाज के पास होता है कि ये मुनि/आर्यिका अपने साथ तो यह मंदिर/धर्मशाला/संस्था को नहीं ले जायेंगे, रहेगी तो अपने पास, अपने लोगों के ही काम आयेगी। इनके माध्यम

से बाहर का रुपया गृहस्थान या तीर्थस्थान पर लग रहा है। इसी लोभ कषायवश स्थानीय समाज मुनि/ आर्यिका/त्यागी/व्रती का पूर्ण सहयोग करते हैं।

परिग्रही गृहस्थ तो परिग्रह में ही आनन्द मनाता है और अपने संसर्ग से अपरिग्रही को परिग्रही बनाने की कोशिश करता है। वह त्यागी तपस्वी की साधना में विश्वास करके उनकी साधना के फल को लौकिक वस्तुओं की प्राप्ति हेतु उपयोग करना चाहता है। इसीलिए मुनि से मंत्र/तंत्र/ज्योतिष पूछता है और उसके द्वारा धन बढ़ाने की कामना करता है। अन्तरंग में परिग्रहभाव होने के कारण ही कोई मुनि स्वयं के लिए निषिद्ध ज्योतिष आदि कार्यों में यश अथवा स्वप्रेरणा से निर्मित होने वाले संस्थान आदि के लिए धनाकांक्षा से प्रवृत्त होता है। जबकि ज्योतिष, मंत्र, तंत्र वशीकरण, मारण, उच्चाटन, व्यन्तरबाधा निवारण, जल-अग्नि-विष स्तम्भन, विक्रिया कर्म, धन-धान्य ग्रहण-वैद्यक आदि का प्रयोग आजीविका के लिए मुनि को सर्वथा वर्जित है।[६]

उक्त शास्त्रोल्लेखों के जानकारों की भी प्रवृत्ति मंत्र, तंत्र प्रयोग में दिखायी पड़ती है, उसका मुख्य कारण यश, पद, धन आदि की अपेक्षा ही प्रतीत होती है। अन्यथा लिंगशुद्धि श्रेष्ठव्रतशुद्धि आदि की हानि का कार्य कभी नहीं किया जाता।[७] लिंग शुद्धि वाला मुनि धन, यौवन, कुटुम्बीजन और संसार के समस्त पदार्थ बिजली की चमक के समान क्षणभंगुर मानकर इनमें अनासक्त रहता है।

मुनि को अन्तरंग-बहिरंग परिग्रह से मुक्त होना आवश्यक है। मात्र बाह्य परिग्रह से मुक्त होकर ही सिद्धि प्राप्त नहीं कर सकता है। बाह्य परिग्रह से रहित होने पर भी जो मिथ्यात्व भाव से मुक्त नहीं है, वह निर्ग्रन्थ लिंग धारण करके भी परिग्रही है। उसके कायोत्सर्ग, मौन आदि कुछ नहीं होते। जब बाह्य परिग्रह के अभाव होने पर मात्र अंतरंग परिग्रह वाले की समस्त क्रियाएं निष्फल बतलायी गयी हैं, तब जिनने बाह्य परिग्रह को ही नहीं छोड़ा है, उनकी क्रियाएं क्या शरीर संताप के अतिरिक्त फल देने वाली कही जा सकती हैं। अन्तरंग परिग्रह रूप राग को नष्ट करने वाला बाह्य परिग्रह में ममत्व नहीं करता।[८]

अब पूजा में रात्रि-दिन का भेद समाप्त कराया जा रहा है। मंदिरों में कुछेक मुनियों द्वारा तो गृहस्थों को जिनमंदिरों में अप्रासुक और अपवित्र वस्तुओं को भी चढ़ाने की प्रेरणा दी जा रही है। **जैनायतनों में नवरात्र पूजन बड़े ठाट-बाट से कहीं-कहीं होने लगी है।** लौकिक कामनाओं की पूर्ति के लिए ही पूजन विधान कराने पर जोर दिया जा रहा है। महिलाओं के सिर पर पिच्छी रखकर आशीर्वाद देने में प्रसन्नता का अनुभव किया जा रहा है। यह सब जैन धर्म को वैष्णवीकरण की ओर ले जाने के प्रयास हैं और इसके पीछे परिग्रह के प्रति बढ़ता आकर्षण ही है। मुनिव्रत मुक्ति का साधन है। इस व्रत के धारी को सांसारिक प्रयोजनों की सिद्धि रूप साधनों का अवलम्बन अयोग्य होता है।

क्षणमात्र में धर्म का श्रद्धान बिगाड़ने वाले परिग्रह से अयोग्यतम वस्तु मुनि के लिए दूसरी नहीं है क्योंकि इसके साथ जुड़ने पर वह क्रोधी, कषायी, विवादी, बैरी, आपा-पर का विनाशी हो जाता है। परिग्रह अन्तःकरण में दाह पैदा करने वाला होता है, इसलिए आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी ने कहा है- निर्ग्रन्थ मुनियों के रोम के अग्रभाग की अनी के बराबर भी

परिग्रह का ग्रहण नहीं होता।[९] परिग्रहवान मुनि के आभ्यन्तर मोह का अभाव नहीं होता है।

परिग्रह की चाह सतत अतृप्त रखती है। यदि किसी प्रकार इच्छित परिग्रह जुड़ भी जाता है तो उससे तृप्ति नहीं होती है उसके प्राप्त होने से लोभ की वृद्धि ही होती है। परिग्रह के प्रति लोभ से प्रेरित हो साधु विविध प्रकार के निर्माण कार्यों में प्रवृत्त होता है। धीरे-धीरे वह स्वयं उसका संचालक और सूत्रधार बन जाता है और इससे उसकी निर्दोष-निरतिचार चर्या में भी बाधा आती है। इस परिग्रह की चाह ने ही तो कुछेक मुनियों को महानगरों में या परिग्रहधारी गृहस्थों के बीच में रहने को बाध्य कर दिया।

यह सत्य है कि सम्प्रति शुभ संहनन का अभाव होने से पूर्वाचार्यों द्वारा निर्दिष्ट शून्यघर, पर्वतगुफा, पर्वतशिखर, वृक्षमूल, नदी का किनारा, अकृत्रिम गृह, श्मशानभूमि, भयावहवन, उद्यान आदि उपर्युक्त वसतिकाओं[१०] में रहना शक्य नहीं है। इसका यह अर्थ तो नहीं कि स्त्री, पशुओं एवं सप्तव्यसनी जनों से व्याप्त कोठियों, बंगलों अथवा स्वप्रेरणा से निर्मित बहुमंजलीय सर्वसुविधा सम्पन्न आवासों को अपना निवास स्थान बनायें। हां कलिकाल के प्रभाव से और हीन संहनन होने से मुनि ग्राम और नगर में आ रहे हैं/रह रहे हैं तो उनके लिए अनुद्दिष्ट देव-मंदिर, धर्मशालाएं, शिक्षाघर, तीर्थस्थान आदि पर रहकर ध्यान साधना करना बताया है।[११] गृहस्थों के निजी आवासों में अपरिग्रही मुनि को रहने की आज्ञा जिनेन्द्रदेव ने नहीं दी है। जो मुनि महानगरों में श्रावकों/गृहस्थों के निजी आवासों में निवास करते हैं, वे जिनाज्ञा का उल्लंघन करते हैं । यह परिग्रह भावना का परिणाम ही है कि मूलाचार में वर्णित अनगार भावनाओं में वर्णित वसति शुद्धि का ध्यान नहीं किया जा रहा है। वसति के विषय में कहा है कि स्त्री, पशु और नपुंसक से रहित प्रदेश जो कि परम वैराग्य का कारण स्थान है, वसति है। ऐसी वसति में रहना वसति शुद्धि है।[१२] गृहस्थ जीवन प्रायः रागवर्द्धक होता है। इसका संसर्ग ही राग को बढ़ाने वाला होता है।

मुनि शान्त चित्त रहने का अभ्यास करता है, किन्तु परिग्रहवान मनुष्यों के संसर्ग से उसके चित्त की स्थिरता समाप्त हो जाती है और अन्तस् में इच्छाशक्ति जागृत हो जाती है, उसका चित्त अस्थिर अशान्त हो जाता है। वस्तुओं का संग्रह रूप परिग्रह मुनि के रत्नत्रय की विराधना करने वाला होता है, क्योंकि हिंसा आदि चारों पापों में प्रवृत्ति इसी के निमित्त होती है। इसे पांचवा आस्रव द्वार कहा जाता है। हिंसा आदि चार अशुभास्रवों को इससे पोषण मिलता है। इसके कारण सदैव चिन्तित, आतंकित, त्रस्त एवं भयभीत रहना पड़ता है। दूसरों के हृदय में इसी के निमित्त आघात तक पहुंचाता है। इस परिग्रह पिशाच के लिए अपने गुरु और संघ को छोड़कर एकाकी विहार करने वालों को आचार्य वट्टकेर ने **पाप श्रमण** कहा है।

मुनि के द्वारा तिल तुष मात्र परिग्रह ग्रहण निगोद का कारण है। नग्न मुद्रा के धारक मुनि तिलतुष मात्र भी परिग्रह अपने हाथों में ग्रहण नहीं करते। यदि थोड़ा बहुत ग्रहण करते हैं, तो निगोद जाते हैं। (सूत्र पाहुड़ ८)

जब अल्प परिग्रह मुनि का सर्वस्व नष्ट कर देता है, तब मुनि किसी संस्था आदि के

निर्माणार्थ गृहस्थी से द्रव्य कैसे मांग सकते हैं। याचना करने वाले मुनि को तो मोक्षमार्ग से ही पतित कहा गया है।[13]

यदि कोई मुनि यह कहकर अपना बचाव करना चाहे कि हम अपने लिए कुछ नहीं मांगते/समाज के कल्याण के लिए, दूसरे साधु/विद्वानों के लिए संस्था का निर्माण करा रहे हैं, आचार्यों की दृष्टि में यह आत्मवंचना के सिवाय कुछ और नहीं कही जायेगी क्योंकि उन्होंने तो किसी भी प्रकार परिग्रह के प्रति मुनि के ममत्व भाव को अनर्थ का कारण कहा है।

कायचेष्टा के द्वारा जीवघात होने पर साधु कर्मों से बंधता भी अथवा नहीं भी बंधता है, किन्तु परिग्रह से निश्चित बंध होता ही है। इसलिए आचार्य मुनि को परिग्रह छोड़ने का ही उपदेश देते हैं।[14] वस्तुतः दिगम्बर जैन मुनि का वेष यथाजातरूप होता है। दि० जैन मुनि का कठिन श्रम, इन्द्रिय निग्रह, संयम, धर्माभाव, परोपकारवृत्ति, निशंकरूप से ओत-प्रोत होता है। निर्विकारी और सदाचारी नग्नता ही दिगम्बरत्व की भूषण है। विकारी होना दिगम्बरत्व के लिए कलंक है। **मूर्च्छा सहित नग्नता भी हेय है।**

निश्चयापेक्षा अपरिग्रही मुनि शरीर को भी परिग्रही मानता है, उसमें निर्ममत्वभाव रखता है। तन को भी परिग्रही जानने वाले मुनि क्या उपाधियों के व्यामोह में पड़ सकते हैं। उपाधि रूप परिग्रह मान कषाय का पोषक होता है। इसीलिए जिनेन्द्राज्ञा है कि मुनि उपाधियों से अपने को दूर रखे। विहार काल में भी साथ में कोई परिग्रह नहीं रखना चाहिए, किन्तु मूर्च्छाभाव के प्राबल्य ने मुनियों के साथ चौका चलवा दिए। चौकों की व्यवस्था हेतु मोटर गाड़ियां चल रही हैं। दुर्भाग्य है कि मोटर गाड़ी पर आचार्य या मुनि का नाम लिखा हुआ होता है जो उनके मालिकाना हक को सूचित करता है। व्यवहार में लोगों के मुख से सुना जाता है कि उन मुनि महाराज की मैटाडोर या अन्य गाड़ी आयी है। वर्तमान में स्थिरावास, अनियतविहार, एकलविहार आदि विकृतियों का मूल कारण परिग्रह है। इसलिए आचार्य कुन्दकुन्द आदि महर्षि परिग्रह रूपी ब्याल से दूर रहने के लिए मुनियों को सम्बोधित करते हैं और जो परिग्रह से दूर हैं उन्हें मोक्षमार्गी मानते हुए वंदना के योग्य बतलाते हैं। जैसा कि सूत्रपाहुड़ में कहते हैं- जो पांच महाव्रत और तीन गुप्तियों से सहित है, वही संयत-संयमी मुनि होता है और जो निर्ग्रन्थ (परिग्रहरहित) मोक्षमार्ग को मानता है वही वन्दना करने योग्य है।[15]

---

१. 'मूर्च्छा परिग्रहः।' तत्वार्थ सूत्र ७/१७

२. सीह-गय-वसह-मियपसुमारुदमसुरूवहि मंदरिदु मणी।
खिदि-उरगंबर सरिसा परमपयविमग्गया साहू।।
- धवल १/१.१.१./३१/५१

३. सुत्तं हि जाणमाणो भवस्स भवणासणं च सो कुणदि।
सूई जहा असुत्ता णासदि सुत्ते सहा णो वि।।३। सूत्रपाहुड
पुरिसो वि जो ससुत्तो ण विणासइ सो गओ वि संसारे।

सच्चेयण पच्चक्खं णासदि तं सो अदिस्समाणो वि।।४।। सूत्रपाहुड

४. सूत्रपाहुड गाथा-१०
५. जो संजमेसु सहिओ आरंभ परिग्गहेसु विरओवि।
सो होइ वंदणीओ ससुरासुरमाणुसे लोए।।११।।सूत्रपाहुड
६. भगवती आराधना (मूलाराधना ८०३)
जोइस विज्जामंतोवजीवणं वा य वस्सववहारं।
धण धण्णपडिग्गहणं सगणाणं दूसणं होई।।०६।। रयणसार
७. लिंगशुद्धि, श्रेष्ठव्रतशुद्धि, वसतिकाशुद्धि, उत्तमविहारशुद्धि, भिक्षाशुद्धि, ज्ञानशुद्धि, उज्झनशुद्धि, वचनशुद्धि, तपशुद्धि, मनशुद्धि, ये शुद्धि के दस भेद हैं।
८. वहिरंग संगविमुक्को णवि मुक्को मिच्छभाव णिग्गथो।
किं तस्स ठाणमउणं ण वि जाणदि अपसम्भ भावं। मोक्षपाहुड ६७
९. बालग्गकोडिमित्तं परिग्गहगहणं ण होइ साहूणं।
भुंजेइ पाणिपत्ते दिण्णण्णं इक्कठाणम्मि।।७। सूत्रपाहुड
१०. मूलाराधना ६५२, भगवती आराधना गा० २३१, ६३८, मूलाचार गा० ७६१, ७६५
११. "आगंतुगार देवकुले", भगवती आराधना २३१, ६३६
१२. मूलाचार ७६८
१३. जे पंच चेल सत्ता गंथग्गाहीय जायणासीला।
अधाकम्मम्मि रया ते चत्ता मोक्खमग्गम्मि।।७६।। मोक्षपाहुड
१४. अव्यवहारी एको ध्याने एकाग्रमना भवनिरारंभः।
त्यक्तः कषायपरिग्रहः प्रत्यनचेष्टो ऽसंगश्च।। ज्ञानार्णव
हे साधो! लोक व्यवहार को छोड़ एकत्व का चिन्तन करते हुए आरम्भ परिग्रह से रहित होकर एकाग्रमन हो। कषायरूप परिग्रह का त्यागकर प्रमाद रहित होकर पूर्ण असंग (परिग्रह रहित) होने की चेष्टा का प्रयत्न करो।
१५. पंचमहव्वय जुत्तो तिहिं गुत्तिहिं जो स संजदो होई।
णिग्गंथमोक्खमग्गो सो होदि हु वंदणिज्जो य।।२०।।

- निदेशक, दिग० जैन मुनि विद्यानन्द शोधपीठ एवं
रीडर, दिग० जैन कालेज, बड़ौत
१२/५४४, गांधी रोड, बड़ौत- २५० ६११

❑❑❑

परिग्रहपरिमाणव्रत–आज के संदर्भ में

– डॉ० (श्रीमती) सूरजमुखी जैन

'परिग्रह' शब्द 'परि' उपसर्ग पूर्वक 'ग्रह्' धातु में 'अप्' प्रत्यय लगाकर निष्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ है ग्रहण। अतः संग्रह और संग्रहवृत्ति को परिग्रह कहा गया है। जैनाचार्यों ने 'मूर्च्छा परिग्रहः' कहकर आसक्ति को परिग्रह कहा है। आसक्ति ही अनन्त इच्छाओं का कारण और अनन्त इच्छाएं ही सभी अनर्थों का मूल हैं। अतः जैनधर्म में ही नहीं सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति में अपरिग्रह और परिग्रह परिमाण को महत्व प्रदान किया गया है।

आज भौतिकता की चकाचौंध में अन्धा हुआ मानव अधिक से अधिक सोना-चांदी, रुपया-पैसा, धन-धान्य, महल-मकान आदि भौतिक वस्तुओं का संचय करने के लिये प्रतिपल बेचैन रहता है। पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव से हम भारतीय भी क्षमा, दया, करुणा, परोपकार, सेवा, सहयोग, सहानुभूति, प्रेम, सौहार्द्र आदि मानवीय गुणों की जननी विराट भारतीय संस्कृति को भुलाकर बिना सोचे समझे उसी भौतिकता के पीछे भाग रहे हैं। जहां हमारी पुरातन विचारधारा 'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः' की पवित्र भावना से ओतप्रोत थी वहीं आज हमारी भावना दीन दुखी, असहाय और शोषितों का अधिक से अधिक शोषण कर उनके शव पर अपना महल खड़ा करने की हो गयी है। आज हम इतने संवेदनशून्य हो गये हैं कि कोई निर्बल असहाय व्यक्ति भूख से तड़प-तड़पकर हमारी आंखों के सामने ही अपने प्राण त्याग देता है तो भी हमारे हृदय में करुणा जागृत नहीं होती। हम तो प्रतिक्षण सारे संसार की संपदा से अपनी तिजोरी भरने की चिन्ता में ही खोये रहते हैं। न्याय-अन्याय, उचित-अनुचित, मान-अपमान आदि की चिन्ता से मुक्त होकर हम उन्मत्त की तरह अपनी तृष्णा की खाई को भरने में लवलीन हैं।

असीम धनलिप्सा के कारण देश, समाज और परिवार विघटित हो रहे हैं, हम विनाश के कगार पर पहुंच गये हैं। भारतीय संस्कृति में 'मातृ देवो भव, पितृ देवो भव' कहकर माता-पिता को देवतुल्य पूज्य माना गया है, किन्तु आज धन पिपासा ने माता-पिता को तुच्छ और नगण्य ही नहीं त्याज्य बना दिया है, अतिथि का सत्कार न कर उसे दुत्कारा जाता है, गुरु शिष्य का पवित्र सम्बन्ध समाप्त हो गया है। गुरु का उद्देश्य केवल चांदी के टुकड़ों से अपना घर भरने का रह गया है, उसे अपने शिष्य के भावी जीवन और चरित्र निर्माण से कोई प्रयोजन नहीं है। शिष्य भी गुरु को वांछित धन देकर अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ लेता है, उसके हृदय में गुरु के प्रति श्रद्धा और सम्मान के भाव नहीं होते। व्यापारी व्यापार में छल प्रपंच और धोखेबाजी से ग्राहक को लूटकर अपनी कोठी भर रहा है तो चिकित्सक

का ध्येय रोगी को रोगमुक्त करने का न होकर उससे मनमाना धन ऐंठने का रह गया है। ठेकेदार सड़कों और पुलों के ठेके में घटिया-से घटिया माल लगाकर रातोंरात करोड़पति बन जाना चाहता है, भले ही उससे कितनों के प्राण संकट में पड़ जायं। आज कहीं भी किसी भी व्यक्ति का जीवन निरापद नहीं है। फिरौती में असीम धन पाने की लालसा से कितने ही बेकसूर मानवों के अपहरण और धन न मिलने पर उनकी निर्मम हत्या की घटनाओं से प्रतिदिन समाचार पत्रों के पृष्ठ रंगे रहते हैं।

आज देश में स्वराज्य है, प्रजातंत्र राज्य है, किन्तु प्रजा द्वारा नियुक्त शासक प्रजा के रक्षक न होकर भक्षक बने हुए हैं। नेतागण अपने भोगविलास और ऐशोआराम के असीम साधन जुटाने के लिये प्रजा के खून-पसीने की कमाई को पानी की तरह बहा रहे हैं, स्वतंत्रता प्राप्ति के लिये किये गये देश के लाखों महानुभावों के बलिदान को भूलकर रिश्वत और भ्रष्टाचार में आकण्ठ निमग्न हैं। फलतः बोफोर्स घोटाला, प्रतिभूति घोटाला, यूरिया घोटाला, दूरसंचार घोटाला, सी.आर.बी. घोटाला, झारखंड मुक्ति मोर्चा रिश्वत कांड, सेंट किट्स जालसाजी काण्ड, लखूभाई पाठक कांड, हवाला कांड, बिहार का चारा घोटाला, तमिलनाडु की मुख्यमंत्री सुश्री जयललिता से संबंधित विभिन्न मामले एवं सनसनीखेज तहलका डॉट कॉम द्वारा उद्घाटित मामलों का अन्तहीन सिलसिला निरन्तर जारी है। हमारे नेताओं की क्षुधा इतनी प्रदीप्त हो चुकी है कि वह पूरे हिमालय को खाने और संपूर्ण सागर को पीने के बाद भी शांत होती नहीं दिखाई देती।

उक्त संपूर्ण विनाशकारी कृत्यों की जड़ है अपरिमित परिग्रह संचय की असीम लालसा। उक्त समस्या का समाधान कर्मभूमि के प्रारंभ में ही भगवान आदिनाथ ने अहिंसा, सत्य, अस्तेय, और परिग्रह त्याग को बताया था। भगवान आदिनाथ से लेकर चौबीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर तक सभी ने आत्मकल्याण और सामाजिक व्यवस्था के लिये परिग्रह त्याग और परिग्रह परिमाणव्रत को आवश्यक बताया है। गृहत्यागी संन्यासी के लिये सब प्रकार के परिग्रह का त्याग और गृहस्थों के लिये परिग्रह परिमाणव्रत का विधान किया गया है। सकल संयम का पालन तो संपूर्ण परिग्रह का त्याग करने पर ही हो सकता है किन्तु गृहस्थ जीवन का सुचारु संचालन करने के लिये कुछ संग्रह की भी आवश्यकता होती है। अतः उनके लिये आवश्यकतानुसार सीमित पदार्थों को ग्रहण करने और शेष को समाज में वितरित कर देने तथा उनमें आसक्ति न रखने का निर्देश किया गया है। गृहस्थ को धन-धान्य, क्षेत्र भवन, सोना-चांदी, दासी-दास, बर्तन-कपड़े पशु, वाहन आदि सभी पदार्थों के ग्रहण की मर्यादा रखनी चाहिये। मर्यादा कर लेने पर निश्चित रूप से शेष सामग्री को वह समाज हित के लिये त्याग देगा, उनके प्रति उसके हृदय में आसक्ति भी नहीं होगी। जैन धर्म में अहिंसा को परम धर्म माना गया है और परिग्रह संग्रह में निश्चित रूप से हिंसा होती

है। आचार्य अमृतचन्द्र कहते हैं-

अथ निश्चित्त सचित्तौ बाह्यस्य परिग्रहस्य भेदौ द्वौ।
नैषः कदापि संगः सर्वोऽप्यतिवर्तते हिंसाम्।।

- पुरुषार्थसिद्ध्युपाय- ११७

बाह्य परिग्रह सचेतन और अचेतन के भेद से दो प्रकार के हैं, दोनों ही प्रकार के परिग्रह का संग्रह हिंसा से नहीं बच सकता। अर्थात् दोनों में हिंसा होती ही है।

आचार्य पद्मनंदि ने परिग्रहवान के कल्याण की संभावना को अग्नि में शीतलता की उपलब्धि के समान बताया है। जैसे अग्नि में शीतलता नहीं हो सकती, उसी प्रकार परिग्रह संग्रह करने वालों का कल्याण नहीं हो सकता है। वे कहते हैं-

परिग्रहवतां शिवं यदि तदानलः शीतलाः।

जैन तीर्थंकरों तथा जैनाचार्यों ने ही नहीं, अन्य भारतीय ऋषि महर्षियों ने भी परिग्रह परिमाण तथा अपरिग्रह के महत्व का प्रतिपादन किया है। पातंजल योग सूत्र में महर्षि पतंजलि ने भी 'अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहाः' कहकर पांच यमों में अपरिग्रह की गणना की है। वशिष्ठ स्मृति में 'द्वात्रिंशश्च गृहस्थस्य' कहकर गृहस्थ के लिये केवल बत्तीस ग्रास भोजन विहित बताया है। गीता में भी-

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंचित् जगत्यांजगत्।
तेनत्यक्तेन भुंजीथा, मा गृधः कस्यचिद्धनम्।।

के द्वारा त्यागपूर्वक भोग को विहित तथा अन्य के धन पर गिद्ध दृष्टि रखने को गर्ह्य बताया है।

युगदृष्टा संत कबीर भी आवश्यकतानुसार सीमित परिग्रह की आकांक्षा रखते हुए कहते हैं-

साईं इतना दीजिये जामें कुटुम्ब समाय।
मैं भी भूखा ना रहूं, साधु न भूखा जाय।।

- कबीर वचनावली, पृष्ठ १६, १४६

असीम धन संचय और तृष्णा को दुःख का कारण तथा संतोष को सुख का मूल बताते हुए वे कहते हैं-

गोधन गजधन बाजिधन और रतन धन खान।
जब आवै संतोष धन सब धन धूरि समान।।

- कबीर वचनावली, पृष्ठ ५८, ५८१

हमारे ऋषि महर्षियों ने 'संतोष एव सुखस्य परं निधानम्' कहकर इच्छाओं को सीमित रखने और अल्प सामग्री में ही संतुष्ट रहने को सुख का कारण बताया है।

संत विनोबा भावे का 'सर्वोदय अभियान' भी परिग्रह परिमाण का ही समर्थक है। आज की ज्वलंत समस्याओं का समाधान एकमात्र परिग्रह परिमाणव्रत ही है।

अतः पाश्चात्य भोगवाद के मोहजाल को त्यागकर अपनी प्राचीन भारतीय संस्कृति की 'सुखी रहें सब जीव जगत के कोई कभी न घबराये' की सुखद भावना के साथ अपनी इच्छाओं को सीमित कर यथाशक्ति परिग्रह का परिमाण करके ही हम स्वयं सुखी रहने के साथ-साथ अपने देश समाज और परिवार को भी सुखी बना सकते हैं।

- अलका, ३५, इमामबाड़ा, मुजफ्फरनगर

◆◆◆◆

अमर वाणी

"संत और पारस में मोटो आंतरो जाण
वो पारस सोना करे, वो करे आप समान।"

संत की साधना स्वतः बोलती है। साधक संत कभी बोल कर और कभी बिना कहे- सुने सन्निधि में आने वालों को अपने तुल्य ही नहीं अपने से बढ़ चढ़ कर बना देता है।

❑❑❑

समय शाह

- जस्टिस एम. एल. जैन

(ज्येष्ठ कृष्णा ६-७ को सुप्रसिद्ध जैन संत श्री तारण तरण स्वामी की ४८६वीं पुण्य तिथि के सुअवसर पर उनकी अध्यात्मिक कृतियों की एक झलक प्रस्तुत कर रहे हैं विद्वान लेखक- **सम्पादक**)

समय सार का नाम तो करीब करीब सबने सुन रखा है। समय, स्वसमय, पर समय यह भी जानते हैं लोग। समय अनेकार्थी है। कोई समय का अर्थ करते हैं आत्मा। कोई समय से मतलब जैन दर्शन भी लेते हैं। समयसार की स्तुति और पूजा भी करते हैं भक्तजन।

परन्तु समय एक शहंशाह है, एक सम्राट है, धन्य है समय। समय की इस अनुभूति को तारण स्वामी (१४४८-१५१५) ने अपनी सूत्र-पुस्तक 'छद्मस्थ वाणी' में बड़े ही दिलचस्प तरीके से वर्णित किया है। वे बड़े ही सरल जैन ऋषि हो गए हैं। उनकी यह पुस्तक ब्रह्मचारी जय सागर जी ने सम्पादित की है। इसमें सूत्र, संस्कृत टीका, संस्कृत काव्य, हिन्दी गद्य पद्य काव्य अनुवाद के साथ विशेषार्थ देकर प्रकाशित किए गए हैं। मूल सूत्रों के अलावा सब कुछ ब्र. जयसागर जी की कृतियां हैं ऐसा ज़ाहिर है। जयसागर जी तो तारण स्वामी के गणधर समान हैं।

बारहवें गुण स्थान तक श्रावक मुनि सब छद्मस्थ ही कहलाते हैं। तारण स्वामी भी छद्मस्थ थे, एक देश जिन थे, इसलिए उनकी वाणी छद्मस्थ वाणी है। इस पुस्तक में इस सन्त के चौथे गुणस्थान के अपने अनुभवों का संकलन है जिन्हें उनके शिष्यों ने लेखबद्ध किया है। इन सूत्रों में जो लिखा है वह एक बाल के अग्रभाग के करोड़ों भाग करने पर एक भाग के बराबर ही है-अंदाज लगाइए उस समग्र अद्भुत अनुभव का। कल्पनातीत है वह।

तारण स्वामी के दर्शन साहित्य की भाषा संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश व देशी भाषा का अजीब मेल है जिससे ज़ाहिर होता है कि १५वीं सदी के उत्तर काल में व्यवहार में शुद्ध संस्कृत की भूमिका घट चुकी थी, प्राकृत अपभ्रंश की भूमिका भी घट रही थी। दर्शन साहित्य में देशी भाषा का प्रयोग बढ़ गया था और बुंदेलखण्ड में एक गंगा-जमुनी भाषा का उदय हो चुका था।

कोई श्रावक/संत जो चौथे गुणस्थान में अविरत सम्यक्त्व की स्थिति में होता है उससे यदि सवाल किया जाए कि आप क्या, कैसा अनुभव करते हैं-क्या मिल गया है, क्या मिल रहा है आपको ? माकूल सवाल है। क्या जवाब देगा वह इसका ? किस प्रकार अपनी नवीन अनुभूति को बताएगा वह अपने साथियों को, श्रावकों को, भक्तों को और जिज्ञासा रखने वालों को ? शास्त्र कहता है इस अवस्था में आत्मा के सम्यक्दर्शन याने तत्वार्थश्रद्धान नामक गुण का प्रादुर्भाव होता है जो दर्शनमोहनीय कर्म के उपशम, क्षय अथवा क्षयोपशम से उत्पन्न होता है। जिस जीव को यह अवस्था प्राप्त हो उससे पूछें कि भई यह तो हुई शास्त्रों की बातें, आप बताओ आप क्या महसूस करते हो ? पहले से अब में क्या फरक है ? क्या है क्या नहीं है वह अवक्तव्य जो केवली भी नहीं बताते। जिस अपार आनंद की अनुभूति उनको है वह वर्णनातीत है- उसको व्यवहार की शब्दावली से पूर्णतः बताया ही नहीं जा सकता। किसी एक भाषा को क्या विश्व की सारी भाषाओं को उड़ेल कर रख दो तब भी उस अनन्त का वर्णन नहीं हो सकता। जिन वाणी तो बस ओम् से प्रसूत है, परन्तु छद्मस्थ अपने अनुभव को व्यवहार के शब्दों में इतर जनों को बता सकता है- वह भी सूत्र रूप से अनगिनत अस्ति नास्ति के प्रयोगों द्वारा, व्यवहार की भाषा के द्वारा, कुछ-कुछ बता सकता है। जैसे-

न छाया न माया न देशो न कालो
न जाग्रं न स्वप्तं न वृद्धो न बालो
न ह्रस्वं न दीर्घं न रम्यं न अरण्यं

आचार्य कुन्दकुन्द ने समय प्राभृत में कहा है-

सम्म दंसण णाणं ऐसो लहदि त्ति णवरि ववदेसं।
सव्वणय पक्ख रहिदो भणिदो सो समय सारो।।

जो समस्त नय पक्ष से रहित कहा गया है वह समय सार है, यह समयसार ही केवल सम्यक्दर्शन ज्ञान इस नाम को पाता है।

याद रहे जिस युग में तारण स्वामी (१४४८-१५१५) प्रगट हुए वह संतों के उपदेशों का युग था। मुस्लिम सूफी संतों के अलावा सूर, तुलसी, मीरा, नानक, कबीर, रैदास आदि हिन्दू सन्तों का युग था। जैन सन्तों में मुख्य थे तारण स्वामी। जैनेतर परम्परा के संतों को ईश्वर ही सब कुछ है- चाहे साकार हो या निराकार हो, किन्तु जैन संत का काम बड़ा ही कठिन था। वह अपने स्व पर ही केन्द्रित था। प्रभु मिलन के अनुभव को शायद कुछ आसानी से कहा जा सके, जैसे-

१. कबीर तेज अनंत का मानो उगी सूरज सेणि।
पति संग जागी सुंदरी कौतिग दीठा तेणि।।

२. पिंजर प्रेम प्रकासिया जाग्या जोग अनंत।
संसा खूटा भया मिल्या पियारा कंत।।

३. पिंजर प्रेम प्रकासिया अंतरि भया उजास।
मुखकस्तूरी महकही वाणी फूटी बास।।

किन्तु 'स्व' मिलन के अनुभव को वर्णन करना अत्यन्त दुष्कर काम है। तारण स्वामी ही एक मात्र ऐसे जैन सन्त हैं जिनने संगीत व भजनों के जरिये आत्मा के परमात्म बनने की प्रक्रिया में होने वाले अपने अनुभव वर्णन किए हैं।

ममल पाहुड़ के पृ. ७५१-७७१ (१३८) उवन अर्क सोलाही गाथा (१३६) जै जै मेल समय गाथा (१४०) दि सि अंग फूल गाथा (१४१) समय उवन गाथा (१४२) उवन पिय रमन गाथा आदि, गाथा भजनों के द्वारा सम्यक् प्राप्ति के आनंद अनुभवों का विस्तार से वर्णन किया है। उन्हीं की सार छद्मस्थवाणी में सूत्ररूप में लिखा गया है। इस सब अनुभव वर्णन का आस्वादन तो आप पढ़कर ही कर सकेंगे। कुछ आत्मानुभव का रस लीजिए।

अविरत सम्यक्त्वी कहता है-

चौथे जे उत्पन्न जैसे ऐसे होई

(कैसे?) शाह होई, वाह होई, वर होई, वरयाई होई, संवर होई, संवराई होई, तप होई, तेज होई, लब्धि होई, अलब्धि होई, नन्द होई, आनन्द होई, रंज होई, रमण होई, दय होई, दयालु होई, अन्मोद होई, प्रिय होई, प्रवेश होई, प्रसाद होई, (दशमोऽध्यायः)

सम्यक्त्व अनुभूति कैसी है यह ? ऐसी है मानों तीन लोक का बादशाह हो, जब बादशाह की उपस्थिति है तो फिर सब भयों का विलय हो जाता है, शल्य और शंका का भी विलय हो जाता है। यह समय बड़ा ही सहकारी हितकारी है। केवली भगवन्तों को जो सम्पूर्ण ज्ञान उत्पन्न होता है उसका तो कहना ही क्या। वे तो अनन्त समय में प्रविष्ट है, लेकिन चौथे गुणस्थान में सम्यक्त्व की उत्पत्ति है वह एक- एक समय, समय- समय मेरा स्व समय है। यह 'सुदीप्ति प्रवेश' (देदीप्य स्वभाव की प्राप्ति) है यह 'सुन्न प्रवेश' मानो शून्य में प्रवेश है। हा. हा. जय जय सम्यक्त्व जय, गुप्तार जानी (गुप्त रहस्य जान लिया) आचरण जाना जो जैसे है वह वैसे ही है (सुनो) जैसा हमारे है वैसा ही तुम्हारे है, जो मेरा सो तेरा, मेरा ध्रुव है, लाभ लो, ले सकते हो तो लो।

वह सब साधक की भाषा है, अनलहक की भाषा है, रहस्यवादी की भाषा है।

कहते हैं जैसा हमने पाया वैसा तुमको दे रहे हैं, लो, इसे लो। जो इस वक्त हमें सम्यक्त्व की प्राप्ति हुई है वह बेशक प्रसाद है, बेशक सर्वार्थ है, ध्रुव का उदय हुआ है, समय एक सूर्य के समान उदय हुआ है। मानो रत्न जड़ित हार मिल गए हैं। इन हारों को अपनी

आत्मा को, चैतन्य चिदानन्द को समर्पित करो। यह ऐसा लगता है मानो कोई पालकी लेकर आया है, सिंहासन पर हमें बिठा दिया है, यह है 'रत्न जड़ित पहरावणी'।

जानते हो न तीर्थंकरों के प्रगट होता है अशोक वृक्ष- शोक का सब विलय, दिव्यध्वनि मागधी भाषा में परिवर्तित हो जाती है। ऐसा लगता है मानो इष्ट रूपी पुष्पों की वृष्टि हो रही है- वह है असली सहज स्वभाव आनंद-कैसा होगा वह आनंद। मैं तुमको बता क्या रहा हूं, मैं तुमको अनन्त निधि दे रहा हूं, अमृत वर्षा कर रहा हूं- मुक्ति का प्रसाद है यह।

जो धरोहर लिखकर तुम्हारे समक्ष प्रस्तुत की है उसके द्वारा प्रिय स्वभाव-अनन्त स्वरूप की प्राप्ति होगी-

जो थाती लिखि प्रवेश दियो
प्रिय संसर्ग अनन्त प्रवेश
लेहुरे ! बड़े प्रिय प्रमाण दियो
प्रिय प्रमाण ध्रुव, उत्पन्न शाह।

ऐसा लग रहा है मानो हजार क्या, लाखों क्या, करोड़ों क्या, असंख्य अमृत कलशों से आत्मा का अभिषेक हो रहा है और वे कलश जल सब इसी आत्मा में हैं, बनते हैं और वह भी अभिषिक्त हो रहा है।

'शून्य समूह बारि बारि हृदय में ही देखउ'। इस प्रकार अपने अनुभवों को दर्शाते दर्शाते सम्वत् पन्द्रह सौ बहत्तर (१५७२) वर्ष, ज्येष्ठ वदि छठि की रात्रि, सातें शनीचर के दिन, जिन तारण तरण शरीर छूटो, अनन्त सौख्य उत्पन्न प्रवेश।

मेरा महोत्सव मत करो अस्थाप का ही कीजिए।
परिचय स्वयं चिद्रूप का अन्मोद भर भर लीजिए। (पद्यानुवाद)

यह सब मिलेगा-यदि तुम अंकुर आचरण याने आचरण का अंकुरारोपण करो- तब लगेगा क्या हुआ। पाओगे वह होगा-

गम्य अगम्य, अथाह, अग्रह, अलह (अलस्य), अभय भय रहित, सहज स्वंकीय की उत्पत्ति-अनन्तानन्त, अनन्तानन्त, अनन्तानन्त अनन्त उत्पन्न प्रवेश। जय शाह, जय शाह।

ओं उवन उवन उवं उवनं
उवनं सोई लोय नन्त प्रवेशं
उवन शरण सोई विलयं
उवन सुई तारकमल मुक्ति विलसन्ति।

ॐ शुद्धात्मा का उदय हो रहा है। उदय हो रहा है। अपने आत्मा में उस उदय का, उस अनन्त का प्रकाश प्रवेश हो रहा है, संसार के शरण का विलय करके उसका उदय हो

रहा है। उसी उदय में कमल के समान तारण (स्वामी) मुक्ति में विलास करने लगे हैं।

और अन्त में यह सूत्र-

नट-नाट। घटघाट। सटसाट। झटझाट। लटलाट। वटवाट।

विद्वानों के लिए पहेली है यह सूत्र। मेरे विचार में तारण स्वामी कहते हैं हे आत्मा तू ही नट है तू ही नचाने वाला है, तूही घट है और तूही तेरा घाट (मंजिल) है। (कर्म) शठ के साथ तू भी शाठ्य कर; शीघ्र कर्मों की धूल झाड़ दे; लाट (तुच्छ विचारों) को लटका दें; हे वट (वटोही) मोक्ष का वाट (मार्ग) पकड़/धर्म,रूपी वट की वाट (रास्ता) पकड़ अथवा मुक्ति रूपी वट वाली वाटिका में रमण कर।

यह तो एक झलक है आत्मा के अनुभवों की। तारण स्वामी की स्वानुभूतियों का सागर तो 'ममल पाहुड़' में है जो गीतों का एक बड़ा ग्रंथ है। इसका टीका युक्त अनुवाद ब्र. शीतलप्रसाद जी ने सन् १६३६ में किया था जिसमें उनने तत्त्वार्थ सूत्र, समयसार व गोम्मटसार के ज्ञान का भरपूर उपयोग किया है। इस पाहुड़ में गीतों को 'फूलना' नाम दिया है। आत्मा में फूल खिलने की वह बात 'गीत' या 'भजन' में नहीं आती जो 'फूलना' में है। फूलना के पदों को गाथा नाम दिया है। 'ममल पाहुड़' के फूलना (१५८) 'मिलन समय गाथा' के बारे में ब्र. शीतलप्रसाद जी ने लिखा है कि यह उस समय प्रचलित पुरानी हिन्दी का नमूना है, यथा-

विलस रमन जिन मो ले जाई
उव उवन स्वाद रस मिलन मिलाई-१
जिन हो साही जिनय जिना
जिन उवन समय सुइ सिधि रमना-२

इसका अर्थ है- जिनेन्द्र (के गुणों) में मगन होना मुझे विलास (आनन्द) की ओर ले जाता है। जब (समय) उत्पन्न होता है, तब (स्वात्म) मिलन के रस का स्वाद मिलता है। जिस जिन ने (कर्मों को) जीत लिया है उस जिन की साधना करो। जब जिन का समय उत्पन्न हो जाता है वही सिद्धि (मुक्ति) में रमण (आनन्द की प्राप्ति) है।

- २१५, मंदाकिनी एनक्लेव,
अलकनन्दा, नई दिल्ली-११० ०१६

◆◆◆◆

चिन्तन कण–

अपनी परम्पराओं को न भूलें

दि० ६ अप्रैल को इंदिरा गांधी स्टेडियम, नई दिल्ली में संस्कृति मंत्रालय तथा भगवान महावीर मेमोरियल समिति के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित तथा माननीय प्रधानमंत्री जी द्वारा संबोधित भगवान महावीर २६००वें जयन्ती महोत्सव के ऐतिहासिक उद्‌घाटन समारोह में विशाल मंच के एक ओर भगवान महावीर स्वामी की एक भव्य प्रतिमा भी विराजित की गई थी।

जैन धर्म-संस्कृति में जिस स्थल पर तीर्थंकर देव की प्रतिष्ठित प्रतिमा स्थापित की जाती है उसे जिन मंदिर की संज्ञा दी जाती है, उस स्थल की शुचिता-पवित्रता का विशेष ध्यान रखा जाता है। ज़ाहिर है कि किसी सार्वजनिक सभा के मंच को जिस पर अनेक राजनेता, समाज नेता एवं उच्च अधिकारी भी आसीन हों उसे मंदिर का रूप देना या कल्पना करना संभव ही नहीं। न ही राजनेताओं व मंचासीन अन्य मतावलम्बीगण्यमान्य महानुभावों से यह अपेक्षा की जा सकती है कि वे मंच पर जूते उतारकर तथा घड़ी की चैन, पर्स आदि चर्म वस्तुओं को मंच के नीचे ही उतारकर आवें तथा मंच पर भी मंदिर के समान विनयवंत मुद्रा में बैठें। अतः सार्वजनिक सभाओं आदि के मंच पर जिन प्रतिमा के स्थान पर किसी तीर्थंकर चित्र को ही रखने की परम्परा रही है तथा चित्र के सन्मुख ही दीप प्रज्ज्वलित करने की औपचारिकता पूर्ण कर ली जाती है। इसके अतिरिक्त प्रतिमा किसी एक आम्नाय की ही हो सकती है जिससे दूसरी आम्नाय के बन्धुओं को असन्तोष हो सकता है। अच्छा हो, यदि हमारे धर्म गुरु इस विषय पर अपना मार्गदर्शन दें।

दि० २ मई को उत्तर प्रदेश सरकार के राष्ट्रीय एकीकरण विभाग द्वारा रवीन्द्रालय सभागार, लखनऊ, में एक भव्य समारोह का आयोजन किया गया। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि थे उ.प्र. के राज्यपाल महामहिम श्री विष्णुकान्त शास्त्री तथा प्रमुख वक्ता थे अ.भा. दि. जैन शास्त्रि परिषद के अध्यक्ष प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश जी। महामहिम भारतीय संस्कृति के गहन अध्येता हैं तथा प्राचार्य जी जैन जगत के प्रख्यात विद्वान। दोनों ही महानुभावों के बड़े ही सारगर्भित अवसरानुकूल भाषण हुए। कार्यक्रम के अंत में आगरा के 'हम' ललित कला मंच द्वारा 'करुणा निधान भगवान महावीर ध्वनि एवं प्रकाश' नृत्य-नाटिका कार्यक्रम प्रस्तुत किया गया जिसमें कुछ प्रसंगों पर भगवान महावीर का जीवन्त अभिनय भी मंचित किया गया। इस कार्यक्रम के अन्तिम चरण में कलाकारों ने णमोकार महामंत्र के उच्चारण के साथ भगवान महावीर के रूप में ध्यानस्थ कलाकार की दीप जलाकर आरती

उतारी। इसके उपरान्त मंच का संचालन कर रहे जैन बंधु द्वारा आमंत्रित किए जाने पर शास्त्रि परिषद के अध्यक्ष तथा धार्मिक विकृतियों एवं सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध समाज को जागरूक करने के मिशन को ही लेकर जन्मे धर्म संरक्षक अ. भा. दिगम्बर जैन परिषद के प्रदेशाध्यक्ष जी सहित जैन समाज के अनेक गण्यमान्य महानुभावों ने भी रामलीला की तर्ज़ पर उक्त कलाकार की भगवान महावीर के रूप में आरती करके अपने को धन्य किया।

जैन संस्कृति में तीर्थंकरों का तो क्या किसी भी परमेष्ठि का जीवन्त अभिनय मंचित करने की परम्परा नहीं रही है, अनन्त पुण्यशाली तीर्थंकर महाप्रभु का जीवन्त दृश्य प्रस्तुत करने में तो सामान्य केवली भगवन्त भी सक्षम नहीं। दिगम्बर जैन मुनिराज के जीवन्त अभिनय के विषय पर जैन वाङ्मय में संरक्षित ब्रह्म गुलाल मुनि की एक प्राचीन आख्यायिका जैन समाज में बहुत प्रसिद्ध है। मुनि ब्रह्म गुलाल गृहस्थ पर्याय में एक जैन धर्मानुयायी राजा के दरबार में स्वांग-निपुण कलाकार थे। एक बार उन्हें राजदरबार में बाघ का जीवन्त अभिनय प्रस्तुत करने की राजाज्ञा मिली। राजाज्ञा शिरोधार्य करते हुए उन्होंने अभिनय में बाघ के किसी भी स्वाभाविक कृत्य से हुई दुर्घटना/हानि के लिए राजा से क्षमादान प्राप्त कर लिया। फिर एक दिन बाघ की खाल को अपने पूरे शरीर पर लपेटे बाघ के ही समान उछलते-कूदते चिंघाड़ते लाल- लाल आंखों के साथ क्रुद्ध मुद्रा में राज दरबार में प्रविष्ट हुए तथा चक्कर लगाते हुए उछलकर एक झापड़ राजपुत्र के मारकर उसी प्रकार उछलते- कूदते चिंघाड़ते बाहर निकल गए। राजपुत्र का तुरन्त प्राणान्त हो गया। राजा ब्रह्मगुलाल पर अत्यन्त क्रुद्ध हुआ, पर क्षमादान के वचन के कारण विवश था। दरबारियों के सुझाने पर राजा ने कुछ दिन बाद ब्रह्मगुलाल को दि० जैन मुनि का स्वांग भरकर आने को कहा (राज्य के कानून के अन्तर्गत मुनि का अभिनय निषिद्ध था तथा अभिनय करने वाले को प्राणदंड देने का प्राविधान था।) ब्रह्मगुलाल ने स्वांग प्रस्तुत करने के लिए एक मास की मोहलत मांगी जो प्रदान की गई। नियत दिन ब्रह्मगुलाल पिच्छी-कमंडलु लिए दिगम्बर मुनि वेश में सबको धर्मवृद्धि का आशीर्वाद देते हुए राजदरबार में पधारे। सबने खड़े होकर उनका स्वागत किया। राजा के संकेत पर राज नर्तकियों ने बड़ा ही कामुक-मोहक नृत्यगान प्रस्तुत किया जिसे वे पूर्ण निर्विकार भाव से देखा किये। तदनन्तर राजसभा को धर्मोपदेश देकर चलने को उद्यत हुए। राजा सहित सभी सभासदों ने उनके निर्दोष स्वांग की भूरि-भूरि प्रशंसा की तथा राजा के संकेत पर भृत्यगण उनके लिए भेंट-उपहार लेकर आए। उन्होंने उपहारों को अस्वीकार करते हुए कहा कि राजन् मैंने एक मास संयम-साधना का कठोर अभ्यास करके आज प्रातःकाल ही गृह त्याग करके श्री गुरु महाराज से जैनेश्वरी दीक्षा ली है और अब मैं नगर के बाहर वन खंड में विराज रहे श्री गुरुमहाराज के चरणों में ही जा रहा हूं। दिगम्बर जैन मुनि की चर्या जी जाती है, उसका अभिनय नहीं होता।

तो यह है हमारी संस्कृति की परम्परा। अब यह दूसरी बात है कि आज कई मुनिवेशी परम पूज्य दिगम्बर ज़ैन साधु परमेष्ठि का अभिनय मात्र ही तो करते हैं और आस्थावान श्रद्धालुजनों के पूज्य बने विचर रहे हैं।

उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा आयोजित २६००वें जन्म महोत्सव के कार्यक्रमों में एक और विचित्र बात देखने में आई। मंच पर छाए कुछ जैन बन्धुओं द्वारा कार्यक्रम के प्रारंभ में स्व० आचार्य शांतिसागर जी की जयकार तथा उसके बाद तथा बीच-बीच में एवं बार-बार जैन धर्म की सर्वोच्च्व गणिनी आर्यिका ज्ञानमती माताजी की ही जय जयकार करना, प्रमुख नेताओं को उनके ही फ्रेम्ड फोटो भेंट करना यही संदेश दे रहा था कि इस समय दिगम्बर जैन धर्म की सर्वोच्च संत गणिनी आर्यिका जी ही हैं तथा २६००वें जन्म कल्याणक महोत्सव के कार्यक्रम भी कदाचित् उन्हीं की प्रेरणा से आयोजित किए जा रहे हैं। अतः राजनेता एवं उच्च अधिकारी भी जैन समाज की भावनाओं का सम्मान करते हुए अपने उद्बोधन का प्रारंभ पूज्य माताजी के चरणों में अपनी विनयांजलि अर्पित करने के साथ ही कर रहे थे।

इस समय शत शत सहस्र दिगम्बर जैनों की श्रद्धा के केन्द्र तथा आचार्य, उपाध्याय, साधु, परमेष्ठि की संज्ञा से संबोधित किए जा रहे राष्ट्रसंत वयोवृद्ध आचार्य श्री विद्यानंद मुनि जी, संत शिरोमणि आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज, स्व. आचार्य श्री शांतिसागरजी के पट्टासीन आचार्य श्री वर्द्धमानसागर जी महाराज सहित शताधिक संत देश में विद्यमान हैं जिनमें से अनेक अपनी निर्दोष चर्या के लिए भी विख्यात हैं। यह चिंतनीय है कि पूज्य माताजी के प्रति इस प्रकार के भक्तिरेक से कहीं इन परमेष्ठि संतों का अवर्णवाद तो नहीं हो रहा ?

समवशरण

जैन वाङ्मय एवं संस्कृति में तीर्थंकर महाप्रभु की धर्मसभा को 'समवशरण' की संज्ञा दी गई है। समवशरण अर्थात् जहां सभी प्राणियों को समान रूप से शरण प्राप्त हो, सबको अभय दान प्राप्त हो और तीर्थंकर भगवन्त का धर्म उपदेश श्रवण करने का अधिकार बिना किसी ऊंच-नीच, राजा-रंक के भेदभाव के एक साथ बैठकर समान रूप से प्राप्त हो। जैन आगमिक एवं पौराणिक साहित्य में समवशरण की भव्य रचना के विशद वर्णन प्राप्त होते हैं। अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी के समवशरण का विस्तार अन्य तीर्थंकरों की अपेक्षा कम था फिर भी वह एक योजन (४ मील) के विस्तार का तो था ही।

अब से २५५८ वर्ष पूर्व आषाढ़ शुक्ला पूर्णिमा के दिन इन्द्रभूति गौतम आदि उस युग

के विख्यात ११ महापंडितों ने भगवान महावीर स्वामी से अपनी शंकाओं का समाधान प्राप्त कर अपने विशाल शिष्य समुदाय सहित जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण की थी। अगले दिन श्रावण कृष्ण प्रतिपदा को भगवान का प्रथम दिव्य धर्म उपदेश सम्राट श्रेणिक बिम्बिसार की राजधानी राजगृह में हुआ था- अंतिम तीर्थंकर के धर्मचक्र का प्रवर्तन हुआ, जिन धर्म शासन के नए युग का प्रारंभ हुआ।

दिगम्बर आम्नाय के अनुसार भगवान का समवशरण पंच शैलपुर-राजगृह के विपुलाचल पर्वत पर लगा था तथा उस स्थान को अनुमान से चिह्नित कर स्मारक स्वरूप एक भव्य समवशरण मंदिर का निर्माण कराया गया है जहाँ प्रतिवर्ष श्रावण कृष्ण प्रतिपदा को एक भव्य धर्मोत्सव मनाया जाता है। श्वेताम्बर आम्नाय के अनुसार राजगृह के वैभारगिरि की उपत्यका में स्थित गुणशील चैत्य उद्यान भगवान का समवशरण स्थल था तथा उसी स्थान को चिह्नित कर स्व. उपाध्याय अमर मुनि जी ने वीरायतन की स्थापना की थी जो अब उनकी सुशिष्या आचार्या चन्दना श्री जी के मार्गदर्शन में एक सुप्रसिद्ध सेवा केन्द्र के रूप में विकसित हो चुका है। दोनों आम्नायों में इस पर कोई मतभेद नहीं कि भगवान महावीर स्वामी के धर्मचक्र का प्रवर्तन राजगृह से हुआ था, विवाद केवल स्थल विशेष पर है- विपुलाचल पर्वत या कि गुणशील चैत्य? हमारी समझ में दोनों परम्पराओं की मान्यता में सत्यांश निहित है। भगवान अपने विशाल संघ सहित विपुलाचल पर्वत पर ही विराजते थे तथा हर कोई किसी भी समय उनसे अपनी शंकाओं का समाधान प्राप्त कर सकता था। सम्राट श्रेणिक ने अपने सवा लाख प्रश्नों के उत्तर विपुलाचल पर्वत पर ही प्राप्त किए थे। कई आगमों को गणधर देव ने उस प्रश्नोत्तर के आधार पर ही निबद्ध किया था। किन्तु भगवान की सार्वजनिक धर्मसभा कदाचित् गुणशील चैत्य-उद्यान में ही जुड़ती थी जिसके विशाल समवशरण मंडप का निर्माण कुबेर (या धनपति श्रेष्ठियों) द्वारा किया जाता था। उसी में भगवान की दिव्य ध्वनि खिरती थी।

जिन मंदिर को तीर्थंकर भगवान के समवशरण का ही प्रतीक कहा गया है। जिन मंदिर में प्रवेश करते हुए भक्त विचारता है कि उसे भगवान के साक्षात् समवशरण में ही प्रवेश करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। मंदिर में प्रवेश कर वह गंध कुटी (वेदी) में विराजित भगवान की परम वीतरागी निर्विकार निश्छल छवि का दर्शन करता है मानो भगवान की अभी दिव्य ध्वनि खिर चुकी है। दिव्य ध्वनि के प्रतीक रूप मंदिर का शास्त्र भंडार है तथा स्वाध्याय कर वह भगवान की दिव्य ध्वनि श्रवण कर पुण्य अर्जित करता है, साधु परमेष्ठी भी यदा-कदा मंदिर में विराजते रहते ही हैं।

सुधी पाठकों एवं विद्वज्जनों से अनुरोध है कि इस विषय पर और प्रकाश डालें।

जन्म नगरी कुण्डलपुर

सम्पूर्ण प्राचीन दिगम्बर जैन वाड्मय (यथा, तिलोय पण्णत्ति, हरिवंश पुराण, उत्तर पुराण, वीर जिणंद चरिउ, आदि) में अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी को कुण्डपुर या कुण्डलपुर के लिच्छवी राजा सिद्धार्थ की रानी प्रियकारिणी त्रिशला के गर्भ से जन्मे बताया गया है। कुण्डलपुर का वर्णन पुराणकारों ने एक वैभवपूर्ण समृद्ध नगर के रूप में किया है।

ईसा की प्रारंभिक शताब्दियों में राजनीतिक उथल पुथल, धार्मिक विद्वेष एवं अराजकता के दौर में बिहार प्रदेश में जैनों का नाम शेष सा ही हो गया था तथा जैन तीर्थ स्थल नष्ट भ्रष्ट कर दिए जाने के कारण उनकी सही पहचान प्रायः विस्मृत हो गई थी। तथापि मध्यकाल से दि० जैन आम्नाय द्वारा राजगिर के निकट नालन्दा जिलान्तर्गत कुण्डलपुर को भगवान की जन्म स्थली माना जाता रहा है तथा गणिनी आर्यिका ज्ञानमती जी इसे ही भगवान की सही जन्म स्थली मानती है (दृष्टव्य- सम्यग्ज्ञान, मई २००१)। श्वेताम्बर सम्प्रदाय का इस पर मतैक्य नहीं है और वे मुंगेर जिलान्तर्गत लछवाड़ के निकट स्थित महाकुंडघाट या कुमार ग्राम को भगवान की सही जन्म स्थली मानते हैं।

किन्तु उपरोक्त दोनों स्थलों को झुठलाते हुए, आधुनिक इतिहासकारों एवं पुरातत्वविदों ने ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक गवेषणा के आधार पर प्राचीन विदेह देशान्तर्गत वैशाली के निकट वासुकुंड (या क्षत्रियकुंड या कुंड ग्राम) को भगवान महावीर का सही जन्म स्थल चिन्हित किया है जिसे अधिकांश दिगम्बर जैन विद्वानों ने स्वीकार भी कर लिया है। वहाँ एक वैशाली जैन रिसर्च इंस्टीट्यूट की स्थापना भी राज्य सरकार के सहयोग से हुई है। देश के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद जी द्वारा वहां भगवान महावीर के एक भव्य स्मारक का शिलान्यास भी किया गया था जिसका अब इस २६००वें जन्म महोत्सव वर्ष में निर्माण कराया जा रहा है। प्रतिवर्ष महावीर जयंती पर वहां भगवान का जन्म महोत्सव धूमधाम से मनाया जाता है जिसमें राज्य सरकार का भी सहयोग रहता है। उत्तर पुराण में भगवान के जन्म नगर कुण्डलपुर का वर्णन करते हुए आ० गुणभद्र ने उसे भरत क्षेत्र के विदेह प्रदेश में ही बताया है (भरतेस्मिन् विदेहरण्ये व्येराइ कुडपुरेशस्य-), अपभ्रंश भाषा के महाकवि पुष्पदंत भी वीर जिणिन्द चरिउ में कुण्डपुर को भरत क्षेत्र के विशाल शोभावाले विदेह प्रदेश में स्थित बताते हैं (- - भरहंतरालि रमणीय विसइ सोहा विसालि कुंडउरि राउ सिद्धत्थ- - -)

श्वेताम्बर आम्नाय में मान्य आगम साहित्य में भगवान महावीर को वेसालिय (वैशालिक) कहा गया है, आचारांग और कल्पसूत्र में उन्हें विदेह वासी बताया गया है। गंगा

के उत्तर का प्रदेश विदेह तथा दक्षिण का प्रदेश मगध कहलाता था। मगध प्रदेश में ही उसकी राजधानी राजगृह (राजगिर), उसके सन्निकट (मात्र १०-१५ मील की दूरी पर ही नालन्दा जिलान्तर्गत) वर्तमान दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कुंडलपुर तथा नातिपूर (मुंगेर जिलान्तर्गत) लछवाड़ स्थित है। मगध में राजतंत्र था तथा सम्राट श्रेणिक बिम्बसार ने सम्पूर्ण मगध प्रदेश को विजित कर उसमें अपना एक छत्र राज्य स्थापित किया हुआ था। विदेह प्रदेश में लिच्छवि क्षत्रियों के वज्जिसंघ का समृद्धिशाली गणतंत्र राज्य था जिसकी प्रमुख नगरी वैशाली थी। कुंडपुर-कुंडग्राम या छत्रिय कुंड वैशाली का एक उपनगर या उसके सन्निकट एक ग्राम था। वरिष्ठ श्वेताम्बर (स्था०) आचार्य श्री हस्तिमल जी महाराज भी उपर्युल्लिखित आगमिक तथ्यों के आधार पर इसे ही भगवान महावीर की सही जन्मभूमि के रूप में स्वीकार करते हैं। (देखें जैन धर्म का मौलिक इतिहास पृष्ठ ५५६)

वज्जिसंघ में ७७०७ लिच्छवि राजा (या मतदाता) थे जो स्वयं एकाधिक ग्रामों के अधिपति थे तथा अपनों में से ही एक को अपना राज प्रमुख चुनते थे। राज प्रमुख सामान्यतया अपने पद पर जीवन पर्यन्त आसीन रहता था। तत्कालीन राज प्रमुख महाराज चेटक थे जो भगवान महावीर के नाना (तथा कुछ के अनुसार मामा) थे। लिच्छवि राजा अपनी परिषद में राज प्रमुख की अध्यक्षता में बैठकर बहुमत से सभी नीतिगत निर्णय लेते थे। वज्जि संघ के शक्तिशाली गणतंत्र राज्य, उसके लिच्छवि राजाओं व उनकी नगरी वैशाली के वैभव तथा उन्नत संस्कृति की भगवान बुद्ध द्वारा एकाधिक बार प्रशंसा किए जाने के उल्लेख बौद्ध आगमिक साहित्य में मिलते हैं।

अस्तु मगधाधिपति सम्राट् श्रेणिक बिम्बिसार के काल में मगध प्रदेश में ही कोई कुंडलपुर या लछवाड़ का स्वतंत्र राज्य रहा हो, इसकी कोई संभावना ही नहीं है। श्रेणिक के पुत्र दुर्दान्त सम्राट अजातशत्रु ने तो भगवान महावीर के जीवन काल में ही वज्जिसंघ को पराजित कर वैशाली का पूर्ण विध्वंस कर दिया था तथा अपने साम्राज्य का विस्तार विदेह प्रदेश में भी कर लिया था। लिच्छवि गणतंत्र भले ही मिट गया पर उन्होंने कभी किसी राजा की दासता स्वीकार नहीं की।

यद्यपि वैशाली के निकट वासाकुंड (या क्षत्रिय कुंड) के भगवान महावीर के सही जन्म स्थान होने में कोई संदेह प्रतीत नहीं होता तथापि चूंकि कुछ मनीषियों का राजगिर के निकट के कुंडलपुर या मुंगेर जिलान्तर्गत लछवाड़ के पक्ष में आग्रह है, अच्छा हो यदि इस २६००वें जन्म महोत्सव वर्ष में आयोजित हो रही किसी राष्ट्रीय संगोष्ठी में इस विषय पर विशद् चर्चा कराकर मतैक्य स्थापित कर लिया जाय।

– अजित प्रसाद जैन

ज्योति अमर रहे

११ जून को ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ में इतिहास-मनीषी, विद्यावारिधि स्व. डॉ. ज्योति प्रसाद जैन की १३वीं पुण्यतिथि पर उनकी स्मृति में नगर के लब्धप्रतिष्ठ साहित्यकार कवि डॉ. परमानंद जड़िया की अध्यक्षता में काव्य-संध्या का आयोजन हुआ। 'शोधादर्श' के प्रधान सम्पादक एवं स्व. डाक्टर साहब के अनुज श्री अजित प्रसाद जैन मुख्य अतिथि और ख्यातिप्राप्त वयोवृद्ध कवि श्री गया प्रसाद तिवारी 'मानस' विशिष्ट अतिथि रहे। इसका संचालन श्री रमाकान्त जैन ने किया।

वाग्देवी सरस्वती की मूर्ति और श्रद्धेय डाक्टर साहब के चित्र पर माल्यार्पण, दीप-प्रज्ज्वलन और डाक्टर साहब द्वारा रचित 'वीतराग स्वरूपम्' और 'जय महावीर नमो' के समवेत गायन और डॉ० शिवभजन 'कमलेश' द्वारा वाणी-वंदना से कार्यक्रम का शुभारंभ हुआ। अपने प्रास्ताविक उद्‌बोधन में डॉ. शशिकान्त ने सभी समागत का स्वागत करते हुए आयोजन की प्रासंगिकता तथा डाक्टर साहब द्वारा भारतीय इतिहास एवं वाङ्मय के क्षेत्र में किये गये अवदान पर प्रकाश डाला और यह इच्छा व्यक्त की कि उनकी समग्र कृतियों का पांच खंडों में शनैः-शनैः प्रकाशन कर दिया जाय। तदनंतर डाक्टर साहब की उपलब्धियों और व्यक्तित्व को मुखरित करने वाले आलेख 'ज्ञान की अमर ज्योति' का वाचन श्रीमती सीमा जैन ने किया। डॉ. ओमप्रकाश त्रिवेदी एवं श्री अजित प्रसाद जैन ने डाक्टर साहब के प्रति अपने भावभीने उद्‌गार व्यक्त किये तथा आगत कवि मनीषियों में से डॉ० महावीर प्रसाद जैन 'प्रशान्त', श्री राजीव पन्त, श्री विष्णुदत्त शर्मा, श्री रवि अवस्थी और डॉ. परमानंद जड़िया ने डाक्टर साहब के प्रति अपनी भावभीनी काव्यांजलियां प्रस्तुत कीं। नन्हीं बालिकाओं कु. मेहा, कु. मनाली और कु. शगुन ने "इतिहास-मनीषी आज स्वयं इतिहास हो गया है। जो वर्तमान था अब अतीत हो गया है।" रचना का समवेत गायन किया और श्री रमाकान्त जैन ने अपने शब्द-सुमन अर्पित करते हुए कहा-

"ज्ञान की अनन्त ज्योति जो वह जगमगाते रहे
वह ज्योति रहे ज्योतित सदा, ज्योति अमर रहे।।"

इस काव्य-संध्या में सहभागिता करने वाले कविवृन्द-डॉ०. महावीर प्रसाद जैन 'प्रशान्त', श्री राजीव पन्त, श्री विष्णु दत्त शर्मा, श्री दिनेश चन्द्र अवस्थी, श्री वीरेन्द्र प्रकाश गुप्त 'अंशुमाली', डॉ० पद्‌माकर द्विवेदी 'बेसुध', श्री शैलेन्द्र शुक्ल, श्री प्रवीण कुमार शुक्ला 'गोबर गणेश', श्री रवि अवस्थी, डॉ. शिवभजन 'कमलेश', श्री रमाकान्त जैन, डॉ. शशिकान्त, श्री गया प्रसाद तिवारी 'मानस' और डॉ० परमानंद जड़िया ने अपने प्रातिभ स्वरों से उद्‌भूत गंभीर, हास्य-व्यंग्यपरक रचनाओं और सरस गीतों से वातावरण को रससिक्त कर आयोजन को धन्य किया।

- सीमा जैन

सामयिक परिदृश्य-

क्षणिकाएं

– रमाकान्त जैन

जय सोनिया भवानी! जय सोनिया भवानी!
सिरपै मुकुट धर बनाया तुम्हें महारानी।
अहिंसा-ब्राह्मी पुरस्कार वितरण था बहाना,
तुम्हारी भी कृपा हमें थी पानी।।

••• ••• ••• ••• •••

वे चाहते हैं वोट बैंक अपना साधना,
हम कर रहे कृपा हेतु उनकी आराधना।
बन रहे दोनों एक दूजे की बैसाखी,
महावीर जन्मोत्सव के बहाने चाहते अपनी प्रभावना।।

••• ••• ••• ••• •••

शालीनता सीमा को पार कर
इतने आगे बढ़ गये अब हम
गुटखा-विज्ञापन में महावीर संग
अर्द्ध-नग्न लड़कियां चित्रित कराने लगे हम।।

••• ••• ••• ••• •••

अनेकान्तवाद का नारा लगाने वाले
इतने एकान्तवादी हम हैं भाई
मन नहीं मिलता यदि हमारा,
भाई के विरुद्ध न्यायालय जाते भाई।।

••• ••• ••• ••• •••

समाचार विमर्श

ऐसा तो होना ही था

दिशाबोध, मई २००१ अंक के सम्पादकीय लेख में पत्रिका के जागरूक सम्पादक डॉ. चीरंजीलाल बगड़ा ने अति गंभीरता से तीन चिन्तनीय घटनाओं का उल्लेख किया है-

(१) "श्री सम्मेदशिखर में गायब हुई २१ वर्षीय आर्यिका साध्वी जी हजारीबाग (बिहार) में किसी व्यक्ति के साथ पकड़ी गई और पुलिस के द्वारा पकड़कर थाने में उपस्थित किए जाने पर **किसी आचार्य श्री पर उसे खराब करने का आरोप मढ़ा है।** अब वह उस भगाए गए **युवक के साथ गृहस्थी बसा कर रह रही हैं।"**

(२) "एक राष्ट्र गुरु गणधराचार्य दो युवतियों से एक साथ उलझ बैठे तथा उनके द्वारा एकत्रित रुपयों को लेकर जब दोनों युवतियां (नाम रेखा और डोली) आपस में लड़ बैठी तो पोल खुले जाने के भय से उन्होंने "आत्म हत्या नोट" लिख कर प्राणान्त करने का कुप्रयास किया। अपने हाथ से उन्होंने कागज पर लिखा है- 'आत्म ग्लानि से संतप्त होकर मैंने नींद की बीस गोली और सल्फास चार खा ली हैं। अपने आप से दुखी होकर' मुझे क्षमा करें- (हस्ताक्षर) नेमिसागर। ३० मिनट हो गए, लेकर-खुदकुशी कर रहा हूँ, ४० मिनट हो गए, उनका चौहान नर्सिंग होम में उपचार हुआ और एटा में एक डाक्टर के निवास पर भी १५ दिन गुजारे। समाज ने उन्हें वस्त्र पहिनाकर रवाना कर दिया है। खेद है कि इतना होने पर भी उनके अंध भक्त श्रावक अभी भी हैं।"

(३) "गौहाटी में एक आचार्यश्री को ऐसी ही किसी विपरीत परिस्थिति में आनन-फानन में विहार करना पड़ा परन्तु फिर भी अगल-बगल के नगरों में आज भी वो धूमधाम से तथाकथित धर्म-प्रभावना (?) करते हुए विहार कर रहे हैं तथा जमकर धन भी बटोर रहे हैं।"

हमें इन तीनों घटनाओं को पढ़कर जरा भी विस्मय नहीं हुआ। जब अपरिपक्व नासमझ नवयुवतियों को आर्यिका दीक्षा दी जाएगी, तो ऐसा तो होना ही था। डॉ. बगड़ा जी ने अपने लेख में इस पर प्रकाश नहीं डाला कि इन भू.पू. आर्यिका जी की आर्यिका दीक्षा हुए कितना समय हुआ था, उसके पूर्व उनका संयम साधना के अभ्यास का काल कितना था, किस दुःखद घटना से व्यथित होकर उनमें वैराग्य भावना इतनी प्रबल हो गई कि उन्होंने इस कठोर संयम के मार्ग को अपनाया या अपनाने के लिए उन्हें उकसाया गया, बहकाया गया। उन्हें खराब करने का आरोप उन्होंने किन आचार्य जी पर लगाया है ? क्या वे उनके दीक्षा गुरू ही थे ? यदि नहीं, तो वह दूसरे किसी आचार्य के इतने घनिष्ट सम्पर्क

में कैसे आई ? लगता है इस प्रकरण में कोई छानबीन नहीं की गई तथा इसे एक अप्रिय घटना मानते हुए प्रकरण को समाप्त कर दिया गया है। ये भू.पू. आर्यिका जी बालिग हैं और इन्हें अपनी इच्छानुसार जीवन जीने का पूर्ण संवैधानिक अधिकार है। अतः गुमशुदगी की रिपोर्ट पर इस नवयुवती की बरामदगी के बाद पुलिस ने आगे कोई कार्यवाही न की हो यह तो समझ में आता है। पर समाज/मुनि संघ भी चुप होकर बैठ जाय यह उचित नहीं। हम तो इन भू.पू. आर्यिका जी के दीक्षा गुरु जी को भी कम दोषी नहीं मानते जिन्होंने यश-ख्याति, मान कषाय के वशीभूत होकर एक चेली और मूंड़ने के लोभ में ऐसी अपरिपक्व दीक्षा दी। ऐसे आचार्यों से दीक्षा देने का अधिकार छीन लिया जाना चाहिए। उन आरोपित आचार्य जी के आचरण के विषय में भी पूरी छानबीन की जानी चाहिए तथा आरोप का संदेह पुष्ट होने पर उन्हें किसी अन्य वरिष्ठ आचार्य के समक्ष प्रायश्चित लेने केलिए बाध्य किया जाना चाहिए।

भूतपूर्व गणधराचार्य जी को मुनि दीक्षा लिए अवश्य ही दीर्घकाल हो गया होगा जिससे उन्होंने आचार्य और फिर उससे भी संतुष्ट न होकर तथा कुछ और विशिष्ट दिखने के लिए अपने को गणधराचार्य की उपाधि से अलंकृत कर लिया था। यदि सचमुच ही उनकी संयम साधना दीर्घकालीन थी तो यह बड़े विस्मय की बात है कि दुराचार व धन संचय का भंडाफोड़ हो जाने पर उन्होंने आत्मग्लानि वश आत्म-हत्या करने का तो निश्चय कुप्रयास किया लेकिन किसी अन्य आचार्य श्री से समुचित प्रायश्चित लेकर संल्लेखनायुक्त समाधिमरण का विचार भी उनके मन में नहीं आया। आत्महत्या का प्रयास करना भारतीय दंड संहिता के अन्तर्गत एक गंभीर संज्ञेय अपराध है जिसके लिए कठोर दंड का प्राविधान है। आत्महत्या का कुप्रयास करने वाले दिगम्बर मुनि वेशी का चिकित्सकीय उपचार कराया जाना तो ठीक था पर उसे पुलिस को देश के कानून के अनुसार दंडित किए जाने के लिए पुलिस को फौरन सौंप दिया जाना चाहिए था।

पूर्वांचल में प्रथम बार विहार करने वाले इन आचार्य श्री के चर्चे पहिले भी सुने हैं। मंत्र-तंत्र तथा बाजीगरों जैसे चमत्कार दिखाकर भोली जनता में अपने अन्ध श्रद्धालु भक्त बनाने में तथा कमाई करने में भी निपुण हैं। शिथिलाचारी मुनि के विरुद्ध कोई कार्यवाही न करने और केवल उन को अपने यहाँ से विदा करने में ही समाज अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ लेती है तो शिथिलाचार पनपेगा ही। इसके लिए तो हम ही दोषी हैं। ऐसा होता ही रहेगा। शिथिलाचार को सहन करना या उपगूहन के नाम पर छिपाना शिथिलाचार को बढ़ावा देना है।

शास्त्रि परिषद का अधिवेशन

अ० भा० दि. जैन शास्त्रि परिषद का ७७वां वार्षिक अधिवेशन दि. २.४.२००१ को फरीदाबाद (हरियाणा) में प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश जी की अध्यक्षता में तथा लगभग १०० विद्वानों की उपस्थिति में सम्पन्न हुआ। अधिवेशन में पांच प्रस्ताव पारित किये गए।

प्रस्ताव-१ के द्वारा पं. विमल कुमार सोंरया द्वारा पदाधिकारियों पर लगाए गए आरोपों का सशक्त प्रतिवाद किया गया तथा सोंरया जी द्वारा पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से परिषद की छवि धूमिल करने की निन्दा की गई। प्रस्ताव-२ के द्वारा कानजी स्वामी की विचारधारा के एक प्रमुख विद्वान के अभिनंदन ग्रंथ के भ. महावीर २६००वें जन्म कल्याणक महोत्सव समिति और दिगम्बर मुनियों की उपस्थिति में विमोचन के संभाव्य उपक्रम पर घोर चिन्ता व्यक्त की गई तथा कानजी की विचारधारा के विद्वानों की आगम एवं संस्कृति विरोधी गतिविधियों से समाज को जागृत करने का एक बार पुनः संकल्प लिया गया और अपने सभी विद्वानों से आग्रह किया गया कि वे देश में जहां भी जाएं समाज को इस आर्ष परम्परा के लिए हानिकारक प्रचार-प्रसार से अवगत अवश्य कराएं तथा समाज को ऐसे कार्यों को न होने देने हेतु जागृत करें। प्रस्ताव-३ के द्वारा पू० आचार्य श्री विद्यानंद मुनि जी से साग्रह निवेदन किया गया कि वे डॉ० हुकमचंद भारिल्ल के अभिनंदन समारोह को अपना सान्निध्य न प्रदान करें और सार्वजनिक मंच से उनका अभिनंदन न हो ऐसा आदेश भी समाज को प्रदान करने की कृपा करें। प्रस्ताव ४ के द्वारा उपस्थित सभी सदस्यों से अनुरोध किया गया कि वे आचार्य विद्यानंद जी की सेवा में दिल्ली में उपस्थित होकर डॉ० भारिल्ल के प्रस्तावित सार्वजनिक सम्मान के प्रति अपना विरोध प्रकट करें। प्रस्ताव-५ के द्वारा दिवंगत साधुओं व विद्वानों को शोक श्रद्धांजलि अर्पित की गई।

अंत में अध्यक्ष प्राचार्य जी ने भी अपने उद्‌बोधन में समाज का आह्वान किया कि विद्वानों के साथ-साथ उसका भी दायित्व है कि वह आर्ष परम्परा की रक्षा करे तथा आर्ष परम्परा विरोधी गतिविधियों का बहिष्कार करें तथा उन्हें मंदिरों में न होने दें।

इस प्रकार २६००वें जन्म कल्याणक महोत्सव वर्ष के प्रारंभ में सम्पन्न होने वाला शास्त्रि परिषद का यह ७७वां वार्षिक अधिवेशन श्री विमल कुमार सोंरया के आरोपों का प्रतिवाद करने तथा डॉ० हुकमचंद भारिल्ल व कानजी पंथी विरोध को ही समर्पित रहा। १०० की भारी संख्या में जुड़े विद्वानों के समूह ने इस ऐतिहासिक महोत्सव वर्ष को समाज की धार्मिक-नैतिक प्रगति के लिए सार्थक बनाने की दृष्टि से समाज को कोई दिशा निर्देश देने की आवश्यकता ही नहीं महसूस की।

श्रमण संस्था में निरन्तर वृद्धिंगत शिथिलाचार की रोकथाम के उपायों पर सिर खपाना

तो कदाचित् निरर्थक ही समझा गया होगा। आदरणीय प्राचार्य जी की ही अध्यक्षता में मेरठ में सम्पन्न हुए शास्त्रि परिषद के सन् १६६८ के अधिवेशन में "मुनि परम्परा की रक्षा हेतु मुनि संघों द्वारा पालन किए जाने के लिए" एक २३ सूत्री नियमावली प्रसारित की गई थी तथा इस आचार संहिता के सम्यक् क्रियान्वयन की दिशा में पहल करने के लिए पांच विद्वानों की एक समिति भी बनाई गई थी जो प्रमुख आचार्यों के पास जाकर विचार-विमर्श करेगी और उनका समर्थन/सहमति प्राप्त कर उक्त आचार संहिता को लागू करवाने का उपक्रम करेगी।

शास्त्रि परिषद द्वारा प्रसारित २३ सूत्री नियमावली को मुनि संघों के लिए 'आदर्श आचार संहिता' की संज्ञा दी गई थी, यद्यपि इसमें आदर्श जैसी कोई बात नहीं थी तथा आ० श्री धर्मभूषण जी जैसे कुछ मुनि संघों में पहले से ही इससे कहीं अधिक कठोर नियम आज भी पूरी निष्ठा से पालन किए जा रहे हैं तथापि इसके लागू होने से कतिपय संघों के त्यागियों-महाव्रतियों की उच्छृंखल प्रवृत्ति पर कुछ तो अंकुश लगाता ही। इस समिति ने तबसे किन-किन आचार्यों से सम्पर्क किया तथा इस नियमावली को लागू कराने में कितनी सफलता प्राप्त की, इसका कोई लेखा-जोखा या चर्चा १६६८ के अधिवेशन के बाद कहीं पढ़ने-देखने में नहीं आई।

सन् १६६८ के अधिवेशन के बाद शास्त्रि परिषद का हीरक जयन्ती अधिवेशन भी सन् १६६६ में सीकर में धूमधाम से सम्पन्न हो गया और अब यह फरीदाबाद का अधिवेशन भी विद्वज्जनों की भारी उपस्थिति में सम्पन्न हुआ। किन्तु लगता है मुनि परम्परा की रक्षा हेतु चिन्ता को मेरठ अधिवेशन के बाद ही असामयिक या अव्यावहारिक समझ तथा मुनि संघों में प्रवृत्त चर्या में सुधार के किसी भी प्रयास को व्यर्थ जानकर त्याग दिया गया।

फरीदाबाद अधिवेशन में व्यक्त किए गए शास्त्रि परिषद के प्रबल विरोध के बावजूद, डॉ. हुकमचंद भारिल्ल का सम्मान समारोह एवं अभिनंदन ग्रंथ विमोचन पूर्व घोषित कार्यक्रम के अनुसार ही दि. ६ अप्रैल को दिल्ली के लाल किले के सामने सुभाष मैदान में भ० महावीर २६००वां जन्म महोत्सव दिगम्बर जैन दिल्ली राज्य समिति, अ.भा. दि. जैन विद्वत् परिषद तथा आत्मार्थी ट्रस्ट दिल्ली के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित एक विशाल जनसभा में समाज के शीर्ष नेताओं की उपस्थिति में एवं राष्ट्र संत पूज्य आचार्य श्री विद्यानंद मुनि जी के सान्निध्य में सम्पन्न हो गया। न केवल इतना ही वरन डॉ. भारिल्ल को 'परमागम विशारद' की उपाधि से भी विभूषित किया गया। ऐसे विरोध की क्या सार्थकता ? विद्वत् जनों को अपना श्रम व शक्ति समाज को तोड़ने में नहीं, जोड़ने में ही लगाना श्रेयस्कर है।

सरकारी समारोह-
कितनी प्रभावना, कितनी अवमानना

दि० ६ अप्रैल को इंदिरा गांधी स्टेडियम, नई दिल्ली में संस्कृति मंत्रालय तथा भगवान महावीर मेमोरियल समिति के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित भगवान महावीर २६००वें जयन्ती महोत्सव के उद्घाटन समारोह में भाग लेने आए राष्ट्र संत पूज्य आचार्य श्री विद्यानंद जी व उनके संघस्थ मुनि जी को, उनके बैठने की समुचित व्यवस्था न होने के कारण, सभागार के द्वार से ही वापस लौट जाना पड़ा। यह उल्लेखनीय है कि द्वार पर जैन समाज का कोई भी छोटा-बड़ा नेता या कार्यकर्ता आचार्य श्री व मुनि जी की अगवानी के लिए मौजूद ही नहीं था। समारोह में भाग लेने के लिए सभागार में समाज के सभी शीर्ष नेता मौजूद थे जो कदाचित् देश के शीर्ष राजनेताओं के साथ मंचासीन होने की सुखानुभूति में ही तल्लीन रहे और छुटभैये नेतागण खचाखच भरे सभागार में अपनी कुर्सी छिन जाने की आशंका से उससे चिपके रहे तथा अन्य सभी कार्यकर्ताओं को अन्दर की व्यवस्था से ही फुर्सत नहीं मिली। यह भी उल्लेखनीय है कि अन्य आम्नाय के शताधिक साधु-साध्वियां अपने पावन सान्निध्य से समारोह को गौरवान्वित कर रहे थे, दिगम्बर जैन श्रमण संघ का प्रतिनिधित्व करने के लिए कोई आचार्य, मुनि या आर्यिका सभागार में मौजूद नहीं था यद्यपि राजधानी में उस समय कई मुनिराज/आर्यिकाएं विराजमान थीं। कदाचित् उन्हें आमन्त्रित करने का विचार ही आयोजकों को नहीं आया होगा और दि० जैन श्रमण संघ का प्रतिनिधित्व करने आए एकमात्र आचार्यश्री को समारोह में भाग लिए बगैर ही लौट जाना पड़ा।

आचार्यश्री के वापस लौट जाने की दुखद घटना की जब सभागार के अन्दर के जन समुदाय को जानकारी हुई तो सभागार में शोर-शराबा तथा हंगामे का माहौल हो गया और माननीय प्रधानमंत्री जी ने व्यंगय में उसकी तुलना संसद से कर दी। प्रधानमंत्री जी के आचार्यश्री को ससम्मान वापस लाने के लिए सांसद श्री लक्ष्मीमल सिंघवी एवं दि० जैन समाज के दिल्ली प्रदेशाध्यक्ष श्री चक्रेश जैन को भेजने पर ही सभागार में शान्ति-व्यवस्था पुनर्स्थापित हो सकी।

आचार्यश्री तो पदयात्राश्रम के कारण पुनः न आ सके पर उन्होंने अपना लिखित संदेश तथा आशीर्वाद भेज दिया जिसे प्रधानमंत्री जी ने अपने वक्तव्य में सुनाया। प्रधानमंत्री जी तथा गृहमंत्री जी ने अपने वक्तव्यों में इस दुःखद घटना पर खेद प्रकाश एवं क्षमा याचना कर दि० जैन संतों के प्रति अपनी सम्मान भावना का परिचय भी दिया।

इस यादगार वीर जयंती महोत्सव उद्घाटन समारोह में दि० जैन समाज के शीर्ष नेताओं ने पंच परमेष्ठी पदासीन पूज्य धर्म गुरुओं के प्रति जो उदासीनता का परिचय दिया

वह लज्जाजनक है। सभागार में उपस्थित जैन जन समुदाय ने आचार्यश्री की वापसी पर अपना क्षोभ विरोध प्रकट करने के लिए जो शोर-शराबा-हंगामा किया वह हमारी सामाजिक अनुशासनहीनता का ही परिचायक है। विरोध प्रदर्शित करने का अधिक गरिमायुक्त तरीका कदाचित् यह होता कि दि० जैन समाज के लोग मौन धारण कर एक साथ सभागार से बाहर चले जाते तब कदाचित् हमारे समाज नेताओं को धर्म गुरुओं के प्रति अपनी लापरवाही व उपेक्षा का सही एहसास होता।

दि० २७ मई को उत्तर प्रदेश शासन के राष्ट्रीय एकीकरण विभाग के तत्वावधान में तथा जैन धर्म प्रवर्द्धनी सभा, लखनऊ के सहयोग से लखनऊ के राय उमानाथ बली प्रेक्षागृह में श्रुत पंचमी पर्व पर प्रस्तुत कार्यक्रम में यद्यपि वक्ताओं में माननीय डॉ० शीमा रिज़वी, राज्यमंत्री, के अतिरिक्त सभी जैन धर्मावलंबी थे पर कोई भी विद्वान वक्ता महान ज्ञान पर्व-श्रुत पंचमी के महत्व पर सार्थक प्रकाश नहीं डाल पाए जो दि० २८ मई के दैनिक जागरण में प्रकाशित निम्नलिखित रिपोर्ट से परिलक्षित होता है-

"मालूम हो कि श्रुत पंचमी पर्व पर भगवान महावीर के ग्रंथों को लिपिबद्ध किया गया था और तभी से धार्मिक पुस्तकों को सुरक्षित रखने के मकसद से यह पर्व मनाया जाता रहा है पर **मौजूदा समय में इस पर्व की उपयोगिता बहुत कम हो गई है।**"

हमने इस प्रेस रिपोर्ट पर अपनी प्रतिक्रिया इसी अंक के सम्पादकीय लेख में की है।

दि. ६ अप्रैल को उत्तर प्रदेश के संस्कृति विभाग द्वारा स्थानीय जैन समाज के सहयोग से बिन्दादीन मंच बेगम हज़रत महल पार्क लखनऊ में माननीय मुख्यमंत्री जी के मुख्य आतिथ्य में आयोजित विशाल जनसभा में जैन धर्मावलम्बी विद्वान वक्ताओं ने भगवान महावीर स्वामी की शिक्षाओं पर कम तथा मुख्यमंत्री जी तथा उनके उच्च अधिकारियों की प्रशंसा करने में ही अधिक समय लगाया तथा यह भी कह दिया कि हम जानते हैं कि मुख्यमंत्री जी जैन समाज की अल्पसंख्यक समुदाय घोषित किए जाने की मांग को उचित नहीं मानते, अतः हम उस मांग पर जोर नहीं देते।

हमें पता नहीं कि समाज के उन स्वयंभू नेता जी को पूरे जैन समाज की ओर से मुख्यमंत्री जी को यह आश्वासन देने के लिए किसने अधिकृत किया था। जबकि दिगम्बर जैन समाज की तीनों अखिल भारतीय संस्थाएं- महासमिति, महासभा एवं परिषद एक स्वर से जैन समाज को धार्मिक अल्पसंख्यक समुदाय घोषित किए जाने की मांग करती आ रही हैं।

हमारी समझ में नहीं आ रहा है कि कतिपय जैन बन्धुओं के इस प्रकार के धार्मिक सहयोग से इन सरकारी समारोहों द्वारा जैन धर्म की प्रभावना हो रही है या अवमानना।

- अजित प्रसाद जैन

समाचार

जन्म कल्याणक महोत्सव पर

(क) गुजरात सरकार के कुछ महत्वपूर्ण निर्णय

(१) उत्तर गुजरात युनिवर्सिटी का नाम श्री हेमचन्द्राचार्य युनिवर्सिटी होगा।

(२) गुजरात में अहिंसा युनिवर्सिटी की स्थापना होगी।

(३) इस अहिंसा वर्ष में नये बूचड़खानों व मच्छीमारी के नए टेंडर नहीं दिए जाएंगे।

(४) जीव दया का कार्य करने वाले श्रेष्ठ कार्यकर्ता को प्रतिवर्ष एक लाख रुपए का 'भगवान महावीर जीव दया पुरस्कार' प्रदान किया जाएगा।

(ख) मध्यप्रदेश सरकार का महत्वपूर्ण निर्णय-

मध्य प्रदेश सरकार ने विधिवत् अधिसूचना जारी करके जैन समाज को 'धार्मिक अल्पसंख्यक समुदाय' की मान्यता प्रदान कर दी है।

धार्मिक अल्पसंख्यक समुदाय घोषित हो जाने से जैन समाज को निम्नलिखित लाभ अनुमन्य होंगे-

(१) सामाजिक, धार्मिक, शैक्षिक संबंधी दशा सुधारने के लिए सुरक्षा और आर्थिक सहायता।

(२) धार्मिक स्थानों, उपासनागृहों और धार्मिक चिन्हों का समुचित सम्मान और उनके धार्मिक हितों की सुरक्षा।

(३) साम्प्रदायिक सद्भाव बनाये रखने के लिए पुलिस संरक्षण और उसमें बाधा डालने वालों के खिलाफ कड़ी कार्यवाही।

(४) धार्मिक शिक्षा के साथ आधुनिक विषयों की शिक्षा के लिए भारत सरकार द्वारा आर्थिक सहायता तथा छात्रवृत्तियां।

(५) पाली, प्राकृत, अर्द्ध मागधी, संस्कृत आदि भाषायें सीखने के लिए विशेष सरकारी व्यवस्था तथा धार्मिक परीक्षाओं को मान्यता।

(६) समाज द्वारा संचालित ट्रस्टों की संपत्ति की सुरक्षा और उनमें गड़बड़ी करने वालों के खिलाफ विशेष कानून और सामान्य कानून में छूट।

(७) विशेष न्यायाधिकरण, वित्त निगम, कल्याण समितियां और मंत्रिमंडल में विशेष आरक्षण।

(८) रियायती दरों पर सरकारी ऋण और व्यापार उद्योग लगाने के लिए विशेष अभियान के साथ ऋण और सब्सिडी (अनुग्रह राशि)।

(९) समाज द्वारा खोले गए और प्रस्तावित चिकित्सा महाविद्यालयों, अस्पतालों, इंजीनियरिंग कालेजों, व्यपार प्रबन्ध (एम.बी.ए.) संस्थाओं आदि में समाज के छात्रों के लिए विशेष आरक्षण और अनावश्यक रूप से परेशान करने वाले कानूनी दावपेंचों से मुक्ति या उनमें शिथिलता। **(जैन गजट से साभार)**

(अल्पसंख्यक धार्मिक समुदाय की मान्यता का विरोध करने वाले बन्धुओं को गंभीरतापूर्वक विचार करना चाहिए कि जैन समाज को उपरोक्त लाभों, सुविधाओं से वंचित कराना कहाँ तक उचित है। -सम्पादक)

शिविर सम्पन्न

बड़ागांव (बागपत, उ.प्र.)- यहाँ सराकोद्धारक पूज्य उपाध्याय श्री ज्ञानसागर जी महाराज के ससंघ सान्निध्य में अ.भा. दि. जैन शास्त्री परिषद द्वारा १७ जून से २४ जून २००१ तक 'शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर' सानन्द सम्पन्न हुआ। शिविर में तत्वार्थसूत्र, धर्म प्रवचन, निश्चय-व्यवहार, निमित्त-उपादान, पुण्य-पाप, अकालमरण, विधि विधान एवं वास्तुशास्त्र आदि विषयों का प्रशिक्षण दिया गया। दिल्ली के डॉ. हुकुमचन्द जैन ने स्लाइड्स के माध्यम से जैन इतिहास पर प्रकाश डाला।

अंतिम दिन सम्मान सह समापन समारोह में नवीन जैन विद्वानों और विधानाचार्यों को तैयार करने के लिए एक महत्वपूर्ण कार्ययोजना की घोषणा की गई जिसके अनुसार उपाध्याय श्री के सान्निध्य में १० दिन का प्रशिक्षण लेने के बाद तथा निर्धारित पंचवर्षीय पाठ्यक्रम पूरा करने पर परीक्षा में न्यूनतम ५० प्रतिशत अंक पाने वालों को शास्त्री परिषद द्वारा 'सिद्धान्ताचार्य' और 'विधानाचार्य' की उपाधियां दी जायेंगी। पाठ्यक्रम ५ वर्षों के हैं। उपाधि अ.भा. दि. जैन शास्त्री परिषद देगी। परीक्षा में असफल रहने पर अगले वर्ष पुनः परीक्षा में बैठा जा सकेगा। १० दिन का क्रियात्मक प्रशिक्षण अनिवार्य होगा।

- डॉ० कपूरचंद्र जैन, खतौली

'जैन कथायें' का प्रसारण

श्री मणीन्द्र जैन द्वारा निर्मित जैन धर्म की पौराणिक कथाओं पर आधारित टी.वी. धारावाहिक 'जैन कथायें' का प्रसारण २४ जून से प्रति रविवार को दिन में १-०० से १-३० बजे व रात्रि में ८-०० से ८-३० बजे 'आस्था' चैनल पर हो रहा है।

साहित्य सत्कार

(१) विद्वत् संदेशः सं.- अखिल बंसल; प्रकाशक- अ.भा.दि. जैन विद्वत् परिषद, १२६ बी, जादान नगर, दुर्गापुरा स्टेशन रोड, जयपुर-३०२०१८; पृष्ठ; वार्षिक मूल्य रु.५०/-

अ.भा.दि. जैन विद्वत् परिषद के मुख पत्र विद्वत् संदेश का यह अंक ४ (जनवरी से मार्च २००१) दिगम्बर जैन समाज के लोकप्रिय शीर्ष नेता स्व. साहू अशोक कुमार जैन की प्रथम पुण्य तिथि पर उनकी स्मृति को समर्पित विशेषांक के रूप में प्रकाशित किया गया है। सम्पादकीय सहित ६ लेखों में स्वर्गीय साहू साहब के बहुआयामी व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डाला गया है। साथ ही विद्वत् परिषद के तत्वावधान में श्रवणबेलगोला में दि. १७ से १६ दिसम्बर २००० को स्वस्ति श्री चारुकीर्ति भट्टारक स्वामी जी के सान्निध्य में सम्पन्न हुई विद्वत् संगोष्ठी की रिपोर्ट भी प्रकाशित की गई है। यदि संगोष्ठी में पठित शोध आलेखों के निष्कर्ष भी रिपोर्ट में समाविष्ट कर दिए जाते तो रिपोर्ट की पठनीयता व उपयोगिता बढ़ जाती। विद्वत् परिषद को पिछले कुछ वर्षों में दिवंगत हुए प्रमुख विद्वज्जनों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डालने वाले स्मृति अंकों के प्रकाशन पर भी विचार करना चाहिए।

(२) प्रणाम : श्री हरखचंद नाहटा स्मृति ग्रंथ : सम्पादक- ओंकार श्री; प्रकाशन- श्री हरखचंद नाहटा स्मृति न्यास, २१ आनन्द लोक, अगस्त क्रांति मार्ग, नई दिल्ली-११००४६; प्रकाशन वर्ष-२००१; पृष्ठ- ६०८

खरतरगच्छ राष्ट्रीय महासंघ के संघनायक श्रेष्ठीप्रवर स्व. श्री हरखचन्द जी नाहटा की पुण्य स्मृति को समर्पित यह नयनाभिराम विशालकाय स्मृति ग्रंथ तीन खंडों- (१) सत्यम् (२) शिवम् और (३) सुन्दरम् में रोचक एवं ज्ञानवर्द्धक सामग्री संजोए हुए है। प्रथम खंड सत्यम् श्री नाहटा जी की वंश विरासत, उनके जीवन वृत्त, उनके संस्मरण, उनके चिन्तन व उनके बहुआयामी व्यक्तित्व पर केन्द्रित है। पारिवारिक चित्रावली भी दी गई है। दूसरे भाग 'शिवम्' में नाहटा जी की आध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक सोच संबंधी सामग्री प्रस्तुत की गई है। तीसरे खण्ड 'सुन्दरम्' में जैन धर्म, समाज व संस्कृति संबंधी विभिन्न मनीषियों के ज्ञानवर्द्धक लेख संकलित हैं। सम्पूर्ण ग्रंथ की सामग्री सुरुचिपूर्ण व पठनीय है।

इस ग्रंथ का संयोजन कोलकाता के विधिवेत्ता श्री सोहनलाल कोचर ने किया है, प्रकाशन नाहटा जी की द्वितीय पुण्य तिथि के सुअवसर पर किया गया है तथा इसका विमोचन दि. २७ फरवरी २००१ को नई दिल्ली में केन्द्रीय खनन मंत्री श्री सुन्दरलाल जी पटवा द्वारा एक भव्य समारोह में किया गया।

(३) धर्म देशना (प्रवचन संग्रह): प्रवचनकार- आचार्य विद्यासागर म; प्र. ज्ञानोदय प्रकाशन, पिसनहारी जबलपुर-३; प्रकाशन वर्ष-२००१; पृ.१३६; मूल्य रु. २०/-

श्री दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कुण्डलपुर पर बड़े बाबा (भगवान ऋषभनाथ) के महामस्तकाभिषेक के पावन अवसर पर प्रकाशित प्रस्तुत प्रकाशन में संत शिरोमणि आचार्य प्रवर श्री विद्यासागर महाराज के उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य आदि दश धर्मों पर प्रवचनों का संकलन प्रस्तुत किया गया है। आचार्य श्री की शैली अनूठी है तथा विषय-विवेचन हृदयग्राही है।

(४) क्या आर्यिका मातायें पूज्य हैं- भाग-१ नहीं है- ले. पं. रतनलाल बैनाड़ा, आगरा, भाग-२ हाँ है- ले. पं. हेमन्त काला, रायपुर; संपादक द्वय- पं. भरतकुमार काला, मुंबई व पं. गुलाबचंद आदित्य, भोपाल; प्र.- सूरज जय ग्रंथ प्रकाशन समिति रायपुर; वर्ष-२००१; पृ. १४६; मूल्य- रु. १५/-

शोधादर्श-४० (मार्च २०००) के अंक में आर्यिकाद्वय की मनोव्यथा शीर्षक से 'समाचार विमर्श' स्तम्भ के अन्तर्गत हमारा एक आलेख प्रकाशित हुआ था। इस आलेख में हमने एक समाचार पर टिप्पणी की थी जिसमें बताया गया था कि दो आर्यिका माताओं ने चातुर्मास काल के अत्यन्त निकट होने पर भी बुन्देलखंड के एक गांव में चातुर्मास स्थापित करने का संकल्प मात्र इस कारण त्याग दिया तथा उस गांव से बिना आहार किये ही विहार कर दिया क्योंकि वहां के श्रावकों ने आर्यिकाओं की आहार के समय पूजा-आरती करने से इन्कार कर दिया था। और भी दो एक अन्य गांवों में उन्हें इसी प्रकार का अनुभव करना पड़ा तथा अन्ततोगत्वा उन्होंने कुण्डलपुर क्षेत्र (जिला दमोह) में अपने ही बल पर (अर्थात् श्रावकों से आर्थिक सहयोग प्राप्त कर अपनी मान मर्यादा के अनुकल स्वयं अपने आहारादि की व्यवस्था करके) चातुर्मास की स्थापना की। पर चातुर्मास की अवधि में भी उनसे आर्यिकाओं की नंवधाभक्ति किए जाने के शास्त्रीय प्रमाण मांगे जाते रहे जिसका वह कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं दे सकीं। अन्ततः उन्होंने अपनी मनोव्यथा व्यक्त करते हुए महासभा अध्यक्ष जी को इस विषय में निर्णय लेने का अनुरोध किया। समीक्ष्य पुस्तक का प्रकाशन कदाचित् इसी संदर्भ में किया गया प्रतीत होता है।

हमें इन आर्यिका द्वय की आहार पूर्व पूजा-आरती की हठ जिसके समक्ष उन्होंने अपने आहारादि की स्वयं व्यवस्था करने में होने वाले संरंभ-समारंभ-आरंभ-हिंसा के तथा उद्दिष्ट आहार के दोषों को भी गौण समझा बड़ी विचित्र लगी थी। हमारे इस आलेख ने इस चर्चा का सूत्रपात्र कर दिया कि आर्यिकाओं की नवधा भक्ति किया जाना शास्त्रसम्मत है कि नहीं।

समीक्ष्य पुस्तक दो भागों में विभक्त है। प्रथम भाग में श्री रतनलाल जी बैनाड़ा का आलेख कि 'आर्यिका, आर्यिका है, मुनि नहीं'' दिया गया है। यह आलेख इसके पूर्व कतिपय

पत्र-पत्रिकाओं में तथा स्वतंत्र रूप से भी प्रकाशित हो चुका है। इसमें विद्वान लेखक ने शास्त्रीय प्रमाणों के आधार पर यह प्रतिपादित किया है कि दिगम्बर जैन आम्नाय में केवल मुनियों की ही नवधाभक्ति की परम्परा रही है तथा आर्यिकाएं मुनियों की श्रेणी में नहीं गिनी जातीं। समीक्ष्य पुस्तक में इस आलेख का एक दूसरा शीर्षक 'आर्यिकाएं असंयमी, अपूजनीय हैं'' भी अपर नाम करके दिया गया है जो कदाचित् सम्पादक जी का ही दिया हुआ नाम है क्योंकि पूर्व में स्वतंत्र रूप से प्रकाशित आलेख में इस प्रकार का कोई दूसरा नाम देखने में नहीं आया, न ही इस आलेख में यह सिद्ध किया गया प्रतीत होता है कि आर्यिकाएं असंयमी और अपूजनीय हैं।

पुस्तक के दूसरे भाग में प्रकाशित पं. हेमन्त काला, रायपुर के आलेख '-क्या आर्यिका मातायें पूजनीय हैं' अपर नाम ''आर्यिकायें संयमी हैं, पूजनीय हैं'' में विरोधी पक्ष के तर्क शास्त्रीय आधार से दिए गए हैं। सम्पादक जी ने इस विषय पर अपनी कोई राय व्यक्त न करते हुए निर्णय लेने का अधिकार सुधी पाठकों पर ही छोड़ दिया है।

हमारी अल्प बुद्धि में तो यह विवाद निरर्थक है, जैन धर्म में तो सभी सम्यग्दृष्टि संयमी पूज्य माने गए हैं। सकल संयमी (आचार्य-उपाध्याय-साधु परमेष्ठी) मुख्य रूप से तथा देश संयमी गौण रूप से। पं. बनारसी दास जी तो असंयमी सम्यग्दृष्टियों को भी वंदनीय बताते हैं। उन्होंने उन्हें जिनेन्द्र भगवान का लघु नन्दन तक कह दिया है क्योंकि वे भी मोक्षमार्गी हैं। तो फिर महाव्रती आर्यिका माताओं की पूजनीयता-वंदनीयता में तो कोई संदेह ही नहीं। किन्तु यह भी स्पष्ट है कि आर्यिकाएं साधु परमेष्ठी में नहीं गिनी जातीं। यदि कोई श्रावक भक्तिवश आर्यिका जी की पूजा-आरती करता है तो इसमें बुराई क्या है। किन्तु यदि आर्यिका जी इसे अपने पद की मान मर्यादा का प्रश्न बनाएं और अन्य दोषों को गौण समझें तो यह मान कषाय का अतिरेक ही कहा जाएगा।

(५) **ध्यान सूत्रः** सम्पादक- पं. ज्ञानचन्द्र जैन विधानाचार्य; प्र. श्री शेखरचंद जैन, अध्यक्ष, श्री कपूरचंद जैन मेमोरियल ट्रस्ट, ६बी/१०, एन.ई.ए., सर गंगाराम अस्पताल के सामने, ओल्ड राजेन्द्र नगर, नई दिल्ली-६०; पृष्ठ ५६

हर धर्मनिष्ठ सुश्रावक की आकांक्षा होती है कि उसके जीवन का अंत समाधिमरण पूर्वक हो। प्रस्तुत पुस्तक में आचार्य श्री माघनंदि जी विरचित 'शास्त्रसार समुच्चय' ग्रंथ से संकलित किए गए समाधिमरण (सल्लेखना) के समय ध्यान चिन्तन करने योग्य 'ध्यान सूत्र' प्रस्तुत किए गए हैं। संयमी महाव्रतियों को ही नहीं धर्मनिष्ठ सुश्रावकों को जीवन संध्या में इन ध्यान सूत्रों का मनन-चिन्तन उन्हें समतापूर्वक देह त्यागने के लिए प्रेरित करेगा। दिल्ली निवासी सुश्रावक श्री शेखरचंद जैन के इस पुस्तक को पू. आचार्य श्री संभवसागर जी के पास श्री सम्मेदशिखर जी के अपने यात्रा-प्रवास में देखकर उन्हें इसे समाधि-सल्लेखना में रुचि रखने वाले मुमुक्षुओं के उपयोगार्थ पुनः प्रकाशित कराने के भाव हुए जिसके लिए वे बधाई के पात्र हैं।

(६) जैन दर्शन गणित : संकलन- आचार्य श्री धर्मभूषण जी म.; प्र.-अ. भा. जैन युवा फेडरेशन, ८६, ठठेरवाड़ा, मेरठ-२५०००२; तृ.सं.-२००१; पृ.-३२०; मूल्य- रु. १५/-

समीक्ष्य ग्रंथ में जैन दर्शन-सिद्धान्त-संस्कृति विषयक चारों अनुयोगों में समाहित सामान्य जानकारी योग्य महत्वपूर्ण तथ्यों के सार रूप में अंक संख्याओं की शैली में संकलित किया गया है। भाषा सरल तथा शैली रोचक है। इस अकेले एक ग्रंथ के प्रणयन से अनेक शास्त्रों के अध्ययन से प्राप्त होने वाली जानकारी अनायास सुलभ हो जाती है। वस्तुतः यह जैन धर्म का एक उपयोगी कोष ही है।

श्वे. जैन आम्नाय में संरक्षित एवं मान्य ११ अंग सूत्रों में तीसरा आगम स्थानांग सूत्र है जिसमें १ से १० तक के अंकों के वर्गीकरण से जैन धर्म के अनेक तथ्यों का वर्णन किया गया है। आचार्यश्री ने भी उसी शैली को अपनाकर १ से ३२ तक के अंकों के वर्गीकरण में संकलित सामग्री को प्रस्तुत किया है।

इस ग्रंथ की सामग्री का संकलन आचार्यश्री ने अपनी क्षुल्लक अवस्था में किया था तथा इसका प्रथम बार प्रकाशन सन् १९८९ ने हुआ था, द्वितीय संस्करण १९९३ में तथा अब यह तीसरा संस्करण आ० श्री के सुशिष्य मुनिराज श्री चारित्रभूषण एवं श्री समयक्त्व भूषण जी के सहयोग से किंचित् परिवर्द्धित एवं संवर्द्धित रूप में प्रकाशित किया गया है। आचार्य श्री धर्मभूषण जी परम निष्परिग्रही वीतरागी संत हैं तथा निर्दोष मुनिचर्या के कट्टर पक्षधर हैं। ग्रंथ के प्रारंभ में आचार्य श्री सहित उनकी गुरु परम्परा तथा शिष्यों के संक्षिप्त जीवन परिचय के अतिरिक्त उनके संघ में लागू २४ नियमों को भी प्रकाशित किया गया है जिनको यदि अन्य मुनि संघ भी अपना लें तो जैन श्रमण शिथिलाचार की दोष-कालिमा से मुक्त हो जाएं।

(७) तत्त्ववेत्ता डॉ० हुकमचंद भारिल्ल : सम्पादक - ब्र. यशपाल जैन, डॉ० महेन्द्र सागर प्रचंडिया एवं अन्य; प्रकाशक : कानजी स्वामी स्मारक ट्रस्ट, देवलाली एवं अन्य; प्रकाशन वर्ष- २००१; पृष्ठ लगभग ७००

डॉ० हुकमचंद भारिल्ल जैन विद्या के प्रख्यात मनीषी, साहित्यकार, प्रवचनकार एवं समाजसेवी हैं तथा बहुमुखी प्रतिभा के धनी हैं। ६००० पृष्ठों की ४७ पुस्तकों के रचयिता डॉ० भारिल्ल का साहित्य भी बहुआयामी है। शोध प्रबन्ध, दार्शनिक, शैक्षणिक, पद्यात्मक, निबन्धात्मक, जीवनी, रेखाचित्र इन्टरव्यू आदि विविध विधाओं में उन्होंने उत्तम साहित्य का सृजन किया है। समीक्ष्य ग्रंथ उनको समर्पित ११ खंडों में विभाजित विशाल अभिनंदन ग्रंथ है। प्रथम खण्ड में साधुसंतों, राजनेताओं, समाजनेताओं के आशीर्वाद एवं शुभकामना संदेश

हैं। शेष खण्डों में डॉ. साहब के जीवन परिचयात्मक, आत्म कथात्मक लेख तथा उनके बहुआयामी व्यक्तित्व एवं कृतित्व के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालने वाले आलेखों का संकलन प्रस्तुत किया गया है। एक खंड में उनसे संबंधित छाया चित्रों का संकलन भी दिया गया है। तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकमचंद भारिल्ल वस्तुतः स्वयं में ही एक संस्था बन गए हैं। इस ग्रंथ से उनके विशाल व्यक्तित्व का बोध होता है।

इस अभिनंदन ग्रंथ का विमोचन दि. ६ अप्रैल, २००२ को दिल्ली में लाल किला मैदान में राष्ट्रसंत आचार्य श्री विद्यानंद मुनि जी के सान्निध्य में समाज के शीर्ष नेताओं व विद्वज्जनों की उपस्थिति में आयोजित एक भव्य समारोह में हुआ तथा उसमें डॉ. साहब को 'परमागम विशारद' की उपाधि से सम्मानित किया गया। हम भी डॉ० भारिल्ल के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का अभिनंदन करते हैं।

– अजित प्रसाद जैन

(८) **दान चिन्तामणि** : मूल कन्नड लेखक- प्रो. जी. ब्रह्मप्पा; हिन्दी अनुवादक-श्री एम. के. भारती रमणाचार्य; प्र. एस. डी. जे. एम. आई. मैनेजिंग कमेटी, श्रवणबेलगोला-५७३१३५ (जि. हासन-कर्नाटक); द्वि.सं. बसंत पंचमी २००१; पृ. १८२; मूल्य- रु. ६०/-

वातापि के चालुक्य नरेश तैलप द्वितीय आहवमल्ल (राज्यकाल ९५७-९९७ ई.) के प्रधान सेनापति मल्लप की सुपुत्री और उसके महादण्डनायक वीर नागदेव की उदारमना, गुणवती, सुन्दर और प्रिय पत्नी अतिमब्बे की जिनभक्ति, साहित्यानुराग और दानशीलता की असामान्य कथा कल्पना के रंगों का मिश्रण कर इस अपन्यास में अनूठे रूप से संजोयी गयी है। तत्कालीन पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक परिवेश का परिचय प्रस्तुत करने वाली इस कृति से पाठक को कन्नड़ भारती के कविरत्न पंप, पोन्न और रन्न तथा आचार्य अजितसेन और चामुण्डराय प्रभृति अनेक ऐतिहासिक व्यक्तियों से साक्षात्कार का सुयोग भी प्राप्त होता है। यह अनुपम कहानी जैन धर्मावलंबियों द्वारा कर्तव्य और राष्ट्रप्रेम के आगे धर्म को गौण मानकर प्राण उत्सर्ग करने का आदर्श दृष्टान्त भी प्रस्तुत करती है।

इस रोचक जैन ऐतिहासिक उपन्यास को हिन्दी जगत को प्रांजल प्रवहमान भाषा में भेंट करने हेतु इसके रूपान्तरकार तथा प्रकाशक बधाई के पात्र हैं।

(९) **छत्तीसगढ़ का जैन-शिल्प** : सम्पादक- डॉ. लक्ष्मीशंकर निगम; प्र.- जैन अध्ययन संस्थान, यादराम दिगम्बर जैन धर्मशाला के पास, मालवीय रोड, रायपुर (छत्तीसगढ़); प्र. सं.- २००१; २४ चित्र सहित पृ. ८०+१४; मूल्य रु. ५०/-

इस पुस्तक को दो खण्डों-प्रस्तावना खण्ड और छत्तीसगढ़ खण्ड- में विभक्त किया गया है। प्रथम खण्ड में दो लेख हैं- एक भ. महावीर के जीवन और सिद्धान्तों के विषय

में डॉ. शोभा निगम का, और दूसरा 'प्रतिमा विज्ञान और शिल्प में भगवान महावीर' विषयक डॉ. लक्ष्मीशंकर निगम का। द्वितीय खण्ड और परिशिष्ट, जो छत्तीसगढ़ के जैन-शिल्प को समर्पित हैं, में पुरातत्व, कला एवं इतिहासविद् १४ विद्वान मनीषियों के १५ आलेख समाहित हैं। इनमें छत्तीसगढ़ में जैन धर्म एवं कला का सामान्य सर्वेक्षण प्रस्तुत करते हुये दक्षिण कोसल एवं डाहल क्षेत्र की जैन प्रतिमाओं की शैलीगत विशिष्टताओं एवं कुछ अन्य क्षेत्रों की जैन प्रतिमाओं, स्थापत्य, कला एवं पुरावशेषों पर प्रकाश डाला गया है। स्व. बालचंद्र जैन को छोड़कर सभी लेखक जैनेतर होते हुए भी जैन स्थापत्य और कला में इतनी रुचि रखते हैं यह आह्लाद का विषय है। सामग्री के संयोजन एवं सुसम्पादन हेतु डॉ. लक्ष्मीशंकर निगम तथा भ. महावीर की २६००वीं जयन्ती महोत्सव पर इसके प्रकाशन हेतु प्रकाशन संस्था के साथ-साथ श्री रमेश जैन साधुवाद के पात्र हैं। जैन-शिल्प के अध्येताओं के लिये पुस्तक उपयोगी सिद्ध होगीं।

(१०) महावीर गीतगंगा : रचनाकार- कवि मनोहर गणपतराव मारवडकर; प्र.- धर्म मंगल (मराठी पाक्षिक), ५, दिशांत अपार्ट; दीपा हॉ. सोसा., संघवी नगर, डी.पी. रोड, औंध-पुणे-४११००७; प्र.सं. २००१; पृ. ५६

भ. महावीर की २६००वीं जन्म जयन्ती पर 'धर्म मंगल' के विशेषांक के रूप में प्रकाशित कवि मारवडकर जी की यह भक्तिप्रवीण कृति महावीर के भक्तों के लिये आनन्ददायी सिद्ध होगी यह निस्सन्देह है। रचनाकार और प्रकाशक इस गीतगंगा में अवगाहन कराने के लिये साधुवाद के पात्र हैं।

(११) जैन पत्र-निर्देशिका : संकलन-सम्पादन- श्री जे.के. संघवी; प्र.- श्री शांतिनाथ जैन मंदिर ट्रस्ट, वीर सावरकर चौक, चितलसर मानपाडा, थाने-४००६०७ (महाराष्ट्र); प्रकाशन अक्षय तृतीया २००१; पृ. ३२; मूल्य रु. १०/-

इस निर्देशिका में २१० हिन्दी, ८७ गुजराती, १६ मराठी, तमिल, अंग्रेजी आदि विभिन्न भाषाओं की तथा ५० हिन्दी व अन्य भाषाओं में प्रकाशित सामाजिक पत्र-पत्रिकाओं की, इस प्रकार कुल ३६६ जैन पत्र-पत्रिकाओं के नाम व पते देने का श्रमसाध्य पर बहुउपयोगी प्रयास किया गया है। यह सम्पूर्ण जैन समाज की पत्र-पत्रिकाओं की समग्र सूची है; कहना कठिन है क्योंकि कुछ पत्रिकाओं के नाम-पते छूटे हुए प्रतीत होते हैं जैसे- जिनभाषित (मासिक), भोपाल; जैन प्रचारक (मासिक), नई दिल्ली; जैसवाल जैन दर्पण (मासिक), आगरा; भारतीय जैन मिलन समाचार (मासिक), मेरठ-२; अहिंसा वाणी (मासिक), अलीगंज (एटा); मुक्कुडै (तमिल मासिक), चेन्नै-१७; Jain Journal (Quarterly), Kolkata7; JINAMANJARI (Bramhi Society), Canada आदि।

(१२) विनायक विनोद : लेखक- डॉ. पद्माकर द्विवेदी; प्र.- द्विवेदी बंधु प्रकाशन, महाराजगंज, बस्ती; प्रथम आवृत्ति बसंत पंचमी सं. २०५६; पृ. १६६; मूल्य रु. १००/-

पेशे से सरकारी चिकित्सक रहे द्विवेदी जी स्वभाव से विनोदप्रिय हैं और हास्य-व्यंग्य विधा में लेखनी चलाने में सिद्धहस्त हैं। प्रस्तुत कृति उनके ३७ ऐसे ललित निबंधों एवं पद्य रचनाओं का संकलन है जिसमें उनके अनुभवों, ज्ञान और प्रतिभा की स्पष्ट झलक मिलती है। ये निबंध पाठक का मनोविनोद तो करते ही हैं, उसके ज्ञान की अभिवृद्धि भी करते हैं। विनायक (गणेशजी) को अपने विनोद का निशाना बना पुस्तक का नामकरण उन्होंने किया है, और उनके रेखाचित्र के नीचे जोकर (कार्टून) का चित्र आवरण पृष्ठ पर छाप अपने कथ्य को विज्ञापित किया है। शब्दों की व्युत्पत्ति और अभिव्यक्ति में दक्ष लेखक को हिन्दी जगत को यह मनोरंजक संकलन भेंट करने हेतु अनेकशः बधाई।

(१३) प्रेरणा के प्रदीप : लेखक- डॉ० परमानन्द जड़िया; प्र. मधुलिका प्रकाशन, १८६/५१, खत्री टोला, मशकगंज, लखनऊ-२२६०१८; प्र.व. २००० ई.; पृ. ६२; मूल्य रु. १००/-

साहित्य की विविध विधाओं में लेखनी चलाने में प्रवीण और अनेक प्रकाशित कृतियों के रचनाकार जड़िया जी के इस संस्मरणात्मक ग्रंथ में उनके २६ संस्मरण संकलित हैं। कृतज्ञ भाव और 'गुणिषु प्रमोदं' की पुनीत भावना से निबद्ध इस स्मरण-यात्रा के माध्यम से यदि पाठक चाहे तो बहुत कुछ लेखक के इतिवृत्त के सम्बन्ध में उसके बाल्यकाल से ही जान-समझ सकता है, सहकारी विभाग में सरकारी सेवा के दौरान रहे उसके उपकारी अधिकारियों और सहयोगियों का परिचय पा सकता है तथा उसके सम्पर्क में आये साहित्य मनीषियों से साक्षात्कार का सुयोग प्राप्त कर सकता है। 'आत्मकथा' नाम न दिये जाने पर भी यह एक प्रकार से लेखक की आत्मकथा है। इस उज्ज्वल, प्रेरणा प्रदायी कृति के प्रणयन हेतु लेखक बधाई के पात्र हैं।

- रमाकान्त जैन

अभिनन्दन

☐ संगीतज्ञ श्री **हरिचरण वर्मा** को दिल्ली में डी. सी. जैन फाउण्डेशन द्वारा कुन्दकुन्द भारती न्यास के तत्वावधान में प्रवर्तित प्रथम संगीत समयसार पुरस्कार प्रदान किया गया।

☐ ८ अप्रैल, २००१ को मुम्बई में भ० महावीर जन्म जयन्ती समारोह में प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा अहिंसा रिसर्च फाउंडेशन के चेयरमैन **श्री दीपचंद गार्डी** (मुम्बई) उसके मैनेजिंग डायरेक्टर **श्री सुरेन्द्र एम्. मेहता** (चेन्नई), संगीतकार **श्री रवीन्द्र जैन,** राज्य सभा सदस्य **डॉ. लक्ष्मीमल सिंघवी** तथा २२ अन्य महानुभावों को "जैन रत्न" सम्मान से विभूषित किया गया।

☐ ७ मई को ऋषभ विहार, दिल्ली में श्रमण संघ के चतुर्थ पट्टधर आचार्य प्रवर डॉ. **श्री शिवमुनि महाराज** का चादर महोत्सव भव्य समारोहपूर्वक सम्पन्न हुआ।

☐ सन् २००० में डॉ. सुधा मलैया द्वारा स्थापित 'ब्राह्मी-सुन्दरी अलंकरण' से वर्ष २००१ में ४६ वर्षीया जिला एवं सत्र न्यायाधीश म.प्र. **श्रीमती विमला जैन** को सम्मानित किया गया।

☐ स्व. नेमगोंडा दादा पाटिल की स्मृति में प्रतिवर्ष दिया जाने वाला 'विशेष सेवा पुरस्कार' इस वर्ष मराठी मासिक 'सन्मति' के सम्पादक एवं जैन गुरुकुल परम्परा के लिये समर्पित **ब्र. माणिकचंद भीसीकर गुरुजी** को प्रदान किया गया।

☐ स्व. मणीभाई देसाई प्रतिष्ठान द्वारा प्राणीमित्र अहिंसा-प्रेमी **श्री विलास शिवलाल शहा** को 'मणीभाई राष्ट्रसेवा पुरस्कार-२००१' प्रदान किया गया।

☐ 'उपाध्याय ज्ञानसागर श्रुत संवर्द्धन पुरस्कार-२०००' **भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली** को प्रदान करने की घोषणा की गई।

☐ श्री श्यामसुन्दरलाल शास्त्री श्रुत प्रभावक न्यास, फिरोजाबाद द्वारा **ब्र. विद्युल्लता शहा (शोलापुर)** 'महाकवि रइधू पुरस्कार-२००१' से अलंकृत की गईं।

☐ १० जून को नई दिल्ली में ब्राह्मी लिपि विशेषज्ञ **प्रो. किरण कुमार थपल्याल** को 'ब्राह्मी-पुरस्कार (२००१)' तथा गांधीवादी समाजसेविका **सुश्री निर्मलाताई देशपाण्डे** को 'अहिंसा-पुरस्कार (२००१)' से सम्मानित किया गया।

☐ तीर्थंकर ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ द्वारा **श्रीमती सुमन जैन,** सम्पादिका-ऋषभ देशना (इन्दौर) को सौ. चन्दारानी की स्मृति में तथा **डॉ. संजीव सर्राफ (सागर)** एवं **प्रो. के. के. जैन (बीना)** को संयुक्त रूप से सौ. रूपाबाई की स्मृति में स्थापित पुरस्कार तथा **डॉ. (श्रीमती) रमा जैन (छतरपुर)** को 'भगवान ऋषभदेव विद्वत् महासंघ पुरस्कार-२०००' प्रदान किये जाने की घोषणा की गई।

❑ लखनऊ निवासी डॉ० आर.सी. जैन एवं डॉ. इन्दु जैन के सुपुत्र **डॉ० नील जैन** ने इस वर्ष भारतीय प्रशासनिक सेवा परीक्षा में सफलता प्राप्त की।

मार्बल उत्पादन हेतु विश्वविख्यात आर. के. मार्बल्स लि. (किशनगढ़) के मालिक पाटनी बंधुओं को गत वर्ष सीकर में प्रदत्त जैन प्रतीक चिन्हों से युक्त ११.३ फुट लम्बी और ६३ किलो से अधिक चांदी की रत्नजटित ट्राफी का इस वर्ष 'लिम्का बुक ऑफ वर्ल्ड रिकार्ड्स' में नाम दर्ज हुआ है।

उपर्युक्त सभी सम्मानित महानुभावों का उनकी उपलब्धि के लिये **शोधादर्श** परिवार अभिनन्दन करता है और उन्हें अपनी शुभकामना प्रेषित करता है।

शोक संवेदन

❑ १८ अप्रैल, २००१ को लखनऊ में तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र., और उसकी प्रबन्ध समिति के सदस्य ७५ वर्षीय सुश्रावक **श्री किशनचंद जैन,** मालिक संजय जर्दा फैक्टरी, सआदतगंज का हृदयगति रुक जाने से असामयिक निधन हो गया।

❑ १ मई को ऋषभ विहार, दिल्ली में राष्ट्र संत उत्तर भारतीय प्रवर्तक **भण्डारी श्री पद्मचंद्र जी महाराज** का देवलोक गमन हो गया।

❑ ७ मई को लखनऊ में 'मधुलिका' साहित्य परिषद एवं प्रकाशन संस्था के पूर्व महामंत्री ७४ वर्षीय हास्य कवि **श्री गणेश प्रसाद सक्सेना** 'भिक्षुक' पंचतत्व में विलीन हो गये।

❑ ८ मई को अरुणांचल प्रदेश में हुई हेलीकॉप्टर-दुर्घटना में अ.भा. दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी के मंत्री तथा केन्द्रीय मानव संसाधन विकास मंत्रालय के उपसचिव **श्री एस. के. जैन** तथा स्व. साहू अशोक कुमार जैन की सुपुत्री **श्रीमती नंदिता जज** का निधन हो गया।

❑ १२/१३ मई को जयपुर में संस्कृत एवं हिन्दी के मूर्धन्य विद्वान पुराण-कोष निर्माता, उच्च स्तरीय अध्ययन अनुसंधान संस्थान, जयपुर के कार्याध्यक्ष तथा जैन विद्या संस्थान (श्री महावीर जी) के मानद निदेशक ६२ वर्षीय **प्रो. प्रवीणचंद जैन पाटनी** का निधन हो गया।

❑ २ जुलाई को विदिशा में शोधादर्श के लेखक व पारखी पाठक वयोवृद्ध विद्वान **डॉ. गुलाब चन्द्र जैन** का देहावसान हो गया।

उपर्युक्त सभी दिवंगत महानुभावों के प्रति *शोधादर्श* परिवार अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता है, उनकी आत्मा की चिर शान्ति और सद्गति के लिये जिनेन्द्र देव से प्रार्थना करता है और उनके स्वजनों-परिजनों के प्रति हार्दिक संवेदना व्यक्त करता है।

शोधादर्श : पाठकों की दृष्टि में

(हमें सुधी पाठकों के ढेर सारे पत्र प्राप्त हुए हैं। हमे खेद है कि स्थानाभाव के कारण सभी के पत्रों का सारांश नहीं प्रकाशित कर सके हैं- सम्पादक)

❑ **शोधादर्श-४३** अपने नूतन परिवेश में 'महावीर अंक' के रूप में प्राप्त हुआ। मुख पृष्ठ सुन्दर और आकर्षक है। 'गुरुगुण-कीर्तन' में प्राचीन तथा अर्वाचीन कवियों की काव्य सुमनांजलि विषय के अनुरूप है। छोटे-छोटे लेखों में वर्द्धमान महावीर की श्रेष्ठता, तपः साधना का चारु चित्रण हुआ है। डॉ. शशिकान्त की संरचना 'वत्स जनपद में महावीर का विहार' में नाटक का आनन्द और महावीर की विलक्षणता का स्पन्द है।

-डॉ. परमानन्द जड़िया, लखनऊ

❑ **शोधादर्श -४३** में प्रकाशित जितनी भी रचनाएँ हैं वे भगवान महावीर के प्रति आस्थावान बनाने वाली हैं, जैन धर्म के सिद्धान्तों को आचारण का विषय बनाने पर बल देने वाली हैं तथा उदात्त जीवन जीने की प्रेरणा प्रदान करने वाली हैं।

-डॉ. गणेशदत्त सारस्वत,
सम्पादक-'मानस चन्दन',
सीतापुर

❑ **शोधादर्श-४३** हाथ में है। सम्पूर्ण पढ़कर ही छोड़ने का मन हुआ। कवर पृष्ठ पहले से अपेक्षाकृत अच्छा है। सामग्री पठनीय, मननीय, प्रेरणास्पद व स्तुत्य है। अंक में सम्मिलित लेख चुम्बकीय आकर्षण युक्त हैं। सम्पादकीय बड़ा ही सुन्दर, साफ व स्पष्ट है। आपकी अपेक्षायें समयानुकूल हैं, परन्तु क्या समाधान हो सकेगा, यह समय ही बतायेगा। 'दस माह के पुत्र को दीक्षा हेतु देना' चिन्तनीय व ज्वलन्त प्रश्न है। रमाकान्त जी की क्षणिकाएं पसंद आयीं।

पूरा अंक संग्रहणीय है। निष्पक्ष व सही पत्रिका है 'शोधादर्श' जो समाजहित में स्तुत्यकार्य कर रही है।

-पं. सुनील जैन 'संचय' शास्त्री, नरवाँ (सागर)

❑ सामग्री चयन एवं विषय प्रस्तुतीकरण पाठकों को निराश नहीं होने देता।

-डॉ. (श्रीमती) नीलम जैन,
(सम्पादिका- जैन महिलादर्श), गाजियाबाद

❑ **शोधादर्श-४३** पढ़कर प्रसन्नता हुई कि भ. महावीर की २६००वीं जयन्ती पर पत्रिका में बड़े अच्छे लेख एवं सूचनायें हैं तथा कम्प्यूटर पर इसकी सुन्दर, मनमोहक रचना को विशिष्ट आकृति प्राप्त हुई है। अनेक शोधपरक लेखों से परिपूर्ण यह अंक युगपुरुष की महिमा का व्याख्यान है, जो वर्तमान युग में चिन्तन की प्रेरणा देता है।

-डॉ. जयकिशनप्रसाद खण्डेलवाल, आगरा

❑ नई साज-सज्जा में प्रस्तुत अंक २६०० वें वीर जयन्ति महोत्सव वर्ष के परिप्रेक्ष्य में भ. महावीर को समर्पित है तथा विभिन्न लेख आदि उनकी गरिमा के अनुरुप हैं। साथ ही अन्य नियमित स्तम्भ भी अपनी महत्वपूर्ण सामग्री से परिपूर्ण हैं।

-वेदप्रकाश गर्ग, मुजफ्फरनगर

❑ देश के श्रेष्ठ विचारकों के लेखों से समाहित सम्हालकार रखने लायक यह अंक है जो गंभीर चिंतन-मनन को पाठक को बाध्य करता है।

-मूलचन्द जैन, हरदा

❑ **शोधादर्श-४३** बहुत ही सुन्दर एवं भ. महावीर सम्बन्धी काफी पठनीय एवं बहुमूल्य सामग्री संजोये प्रकाशित हुआ है।

-हजारीमल बांठिया, कानपुर

❑ **शोधादर्श-४३** पढ़कर भ. महावीर के बारे में अच्छी जानकारी मिली। दीपावली पर 'कल्चर' का भ. महावीर विशेषांक प्रकाशित किये जाने का विचार है। इससे काफी सामग्री मिल सकेगी।

-श्रीमंत कुमार व्यास,
सम्पादक- कल्चर साप्ता., जालोर

❑ **शोधादर्श-४३** पूर्व की भांति एक बैठक में ही पूरी पढ़ गया। पत्रिका पत्रकारिता के मापदण्ड पर खरी उतरी है। सम्पादकीय में अहिंसा वर्ष के अन्तर्गत अपने सुझाव देकर जो पहल की है वह प्रभावपूर्ण है। जैन धर्म की पाण्डुलिपियों को समुचित ढंग से संग्रहीत एवं सरंक्षित करने हेतु कतिपय संस्थाओं के सुदृढ़ करने के लिए अनेकान्त ज्ञान मन्दिर शोध संस्थान, बीना एवं कुंदकुंद भारती के नाम की प्रस्तुति से अनेक जिनवाणी शिशुओं को गौरव का अनुभव हुआ है।

अहिंसा वर्ष में समाज को व्यसन मुक्त करने, तथा तम्बाकू पान मसाला व अन्य नशीले पदार्थों के त्याग का उपदेश व अभियान चलाने हेतु साधु त्यागी वर्ग से की गई अपेक्षा अति सबल, सफल पहल होगी।

-ब्र. संदीप 'सरल', बीना

❑ **शोधादर्श** में जैन धर्म संबंधी सिद्धांतों को आप जिस सहज व सरल भाषा में प्रस्तुत करते हैं वे मेरे जैसे सामान्य ज्ञान वाले व्यक्ति को भी आसान लगने लगते हैं। इस प्रकार के साहित्य के अधिकाधिक प्रचार-प्रसार की अत्यधिक आवश्यकता है।

-मिलाप चंद डंडिया, जयपुर

❑ जस्टिस एम. एल. जैन ने 'कटोरी सीधी या उलटी' निबन्ध में अनेक प्रमाण उपस्थित किये हैं किन्तु यदि श्वे. जैन शास्त्रों का प्रमाण भी संकलित किया जाता तो अच्छा होता।

पृ. ५२-५३ पर दीक्षा के सम्बन्ध में रखे गये आपके विचारों में सामाजिकता प्रमुख है, धार्मिकता गौण।

-तिलोक मुनि, राजकोट

❑ **शोधादर्श-४३** के रूप-स्वरूप में पर्याप्त परिवर्तन देखकर परम प्रसन्नता हुई। महावीर विषयक बहु विधि सामग्री जैनेतर मनीषियों द्वारा प्रणीत संजोयी गई है। अनेक मुनिवृन्द द्वारा प्रणीत सामग्री का सम्पादन कर आपने महान कार्य किया है। प्रिय भाई नीरज जैन की चिन्ता वस्तुत : चिन्तनीय विषय है। सार और सारांश में यह अंक सर्वथा संग्रहणीय है।

-डॉ. महेन्द्र सागर प्रचण्डिया, अलीगढ़

❑ मार्च २००१ का अंक महावीर स्वामी को समर्पित है। उनके उपदेशों को मानने, समझने और अमल में लाने से मानव, देश व राष्ट्रों का कल्याण संभव है। ऐसे उच्च विचारों से ओतप्रोत सामग्री वस्तुतः प्रशंसनीय है।

अन्य सभी सामग्री भी पठनीय है और अनेक रहस्यों का उद्घाटन करती है। इस सुन्दर पठनीय अंक हेतु बधाई !

-मदन मोहन वर्मा, ग्वालियर

❑ **शोधादर्श-४३** का बाह्य रूप, मुद्रण एवं संपादकीय बहुत ही निखरा है। लेख ठीक हैं, अपनी गरिमा सम्हाले हुए हैं। मुद्रण-दोष न हो, इस पर विशेष ध्यान दिया गया है।

-सुभाष रणदिवे, डोंबिवली (प.)

❑ आपकी सम्पादकीय प्रतिभा से प्रोदभासित 'शोधादर्श' का आफसेट मुद्रण की नवकल्पता से कलावरेण्य रूपवाला अंक (मार्च, २००१ ई.) प्राप्त कर नयनतृप्ति और मनस्तुष्टि एक साथ हुई। भ. महावीर से सम्बद्ध रचनाओं में वैचारिकी की बहुकीर्णता से परिपूर्ण यह अंक महावीर को जानने के साथ ही उनको जीने की पद्धति और प्रक्रिया का

भी निर्देशक है। सम्पादकीय में आपकी समन्वयवादी दृष्टि का विस्फूर्जन श्लाघ्य है। समन्वयवादिता के प्रभाव से ही जैन समाज का सर्वतोभद्र उत्कर्ष संभव है। यह अंक न केवल जैन समाज, अपितु समग्र जनसमाज के लिए मंगलकारी होगा।

-डॉ. श्रीरंजन सूरिदेव, पटना

❑ **शोधादर्श-४३** आद्योपान्त पढ़ा। नया रंग-रूप देखकर अच्छा लगा। सम्पूर्ण अंक भ. महावीर को समर्पित है। विषय सामग्री का चयन उत्तम है। 'सम्पादकीय' में २६०० वां जन्म जयन्ति महोत्सव मनाने हेतु आपके अमूल सुझावों से मैं सहमत हूँ।

–लाल चन्द्र जैन 'राकेश'
गंज बासौदा (विदिशा)

❑ **शोधादर्श-४३** पूरा पढ़ा। डॉ. शशिकान्त जी पत्रिका से अलविदा ले रहे पढ़कर दुःख हुआ। ऐसे विद्वान पुरुष को बराबर लेखनी चलानी चाहिए जिससे हम जैसे अज्ञानियों के लिए कुछ प्रेरणा मिलती रहे। 'शोधादर्श' का हर अंक मैं बड़े चाव से पढ़ता हूँ।

-ताराचन्द्र जैन अग्रवाल, पचेवर

❑ I find many things interesting in thought provoking articles written by enlightened scholars in your magazine.

-Dr. S. P. Patil, Sangli

❑ I find the last issue of the Shodhadersh to be very useful and interesting.

-Prof. Devendra Handa, Shimla

❑ **शोधादर्श** का नया अंक मिला। नई सी सज्जा, कम्प्यूटर की टाइप सैटिंग और आफप्रिण्ट्स का प्रेषण अच्छा लगा।

पाखण्ड के खिलाफ **शोधादर्श** सदा आवाज उठाता रहा है। उसकी धार कम मत होने दीजिए। आज के गुरु तारनहार होते हों या नहीं, पर, गुरु-मूढ़ता बोरनहार अवश्य होती है। वही आज जैन समाज के जनमानस पर छाती जा रही है यह अत्यन्त चिन्ता की बात है। पाखण्डी जब तक पुजते रहेंगे, निर्दोष साधु की अवज्ञा ही होगी, उसे कोई नहीं पूछेगा। जिस पिच्छी के बल पर उनका साम्राज्य चलता है, उसी पिच्छी का खुलेआम अवमूल्यन करके कुछ आस्थारहित निहित स्वार्थी लोग पूरी साधु संस्था को बदनाम कर रहे हैं और कोई बोलने का साहस नहीं कर रहा, यह दुर्भाग्यपूर्ण है। आप वह जोखिम भरा काम कर रहे हैं, इसके लिए साधुवाद।

-नीरज जैन, सतना

❑ **शोधादर्श** का प्रकाशन इतना उपयोगी हो गया है कि जो लेख, समाचार एवं

सूचनायें इसमें पढ़ने को मिलती हैं, हमारे देखने में अन्य किसी जैन पत्रिका में नहीं मिलती। इसमें व्यवधान किसी प्रकार का नहीं आना चाहिए। हमारी भावना है कि डॉ. शशिकान्त को अपने त्याग-पत्र पर फिर विचार करना चाहिए।

-सुबोध कुमार जैन, आरा

❑ **शोधादर्श-४३** में श्री भगवान महावीर के २६००वीं जयन्ती के उपलक्ष्य में आप श्री ने भगवान के संदर्भ में उत्तम लेख छापे हैं। लेखों में वैविध्य तो है ही, सब लेख मिलाकर भगवान जी का चरित्र भी पूर्ण होता है। और एक महत्व की बात यह है कि इन सब लेखों के लेखक भारत के प्रथम श्रेणी के धर्मज्ञ धर्मविद् विद्वान हैं।

-शान्ति के. शहा, सांगली

❑ **शोधादर्श-४३** आद्योपान्त पढ़ा। पृ. १५ पर भ. महावीर निर्वाण क्षेत्र सठियांबडीह (फाज़िलनगर) का उल्लेख है। यह कहाँ पर है? तीर्थक्षेत्र दर्शन में इसका उल्लेख नहीं है। पृ. १६-१७ पर अल्पसंख्यक मान्यता के बारे में आपने जो आपसी चर्चाओं से विवाद सुलझाने का सुझाव दिया है वह अतिशय समयोचित है।

-मनोहर मारवडकर, नागपूर

❑ **शोधादर्श-४३** का आवरण नयनाभिराम है और साज भी आकर्षक है। सुन्दर सूझबूझ भरे प्रयास हेतु बधाई। डॉ. शशिकान्त को जैमिनी अकादमी द्वारा प्रदत्त "बीसवीं शताब्दी रत्न" सम्मान के लिए बधाई !

-वीरेन्द्र प्रकाश गुप्त 'अंशुमाली' लखनऊ

❑ **शोधादर्श-४३** परमगुरु भगवान के २६०० वें जन्मकल्याणक के उत्सव के अनुरुप नवीन परिधान में भारतराष्ट्र के गगनमण्डल में प्रगट हुआ तो दर्शन करके हमें भी विशेष आनन्दस्फूर्ति का अनुभव हुआ।

-सुखमाल चन्द जैन, नई दिल्ली

❑ **शोधादर्श** के मार्च २००१ के अंक में बहुत ही दुर्लभ सामग्री है। भाई रमाकान्त जी का 'वर्द्धमान महावीर' बहुत मेहनत से किया गया संकलन है। 'घुमक्कड़राज महावीर' से पता चला कि 'घुमक्कड़ शास्त्र' की भी रचना हुई और उसमें महावीर के जीवन को भी चर्चा में लिया। पत्रिका के माध्यम से समाज में पठनीय साहित्य के बारे में भी बहुत जानकारी मिलती है।

-साहु शैलेन्द्र कुमार जैन, खुर्जा

❑ **शोधादर्श-४३** शब्दशः पढ़ा। 'सम्पादकीय' में सुझाव ठीक ही दिये हैं। मात्र मंच पर नेता-नेताओं के साथ बैठकर फोटो खिंचवा लेंगे- ताली बजेगी, जय जयकार होगी, बस।

पुराने आचार्यों के पास कोई डिग्री नहीं थी, किन्तु आज तो अनेक उपाधिधारी वर्षों से अपना अड्डा-मठ जमाकर बैठे हैं। घर में जो इच्छाएं पूरी नहीं हुईं वे यहाँ पूर्ण करते हैं। लाखों-करोड़ों के महल मठ हैं-अनाप शनाप खर्चा है।

पृ. ४४ पर रमाकान्त भाई ने खूब लिखा है -'जिनवाणी अब निजवाणी हो गई', 'नेता आश्वासन देने में पक्का, पर निभाने में कच्चा', 'उनकी छींक भी अखबारों में छपे, हमारी मौत पै भी नज़र न पड़े'।

पृ. ४७ पर 'समाचार विमर्श' समीचीन है। सबको अपनी प्रशंसा चाहिए। ना किसी को धर्म से मतलब है, ना प्रतिमा जी से। प्रतिमा जी पर उसका नाम आवे मात्र इतना उद्देश्य है। हमारे मंच पर भी नेता आकर हमें गाली दे जायें, सुन लेंगे- धिक्कार है!

सारतः सम्पूर्ण अंक रोचक, चिन्तनीय और मननीय है।

-महावीर प्रसाद जैन सर्राफ, नई दिल्ली

❑**शोधादर्श-४२** के 'गुरुगुण-कीर्तन' में पुष्पदन्त विषयक निष्कर्ष संगत प्रतीत होता है। 'सम्पादकीय' में उन्हें भलीभांति सम्बोधा गया है जो जैनों को अल्पसंख्यक घोषित करने की मांग के विरोधी हैं। 'पउमचरियं' विषयक डॉ. राजमल बोरा का लेख डॉ. शशि कान्त की टिप्पणी के साथ मननीय है। 'आदिपुराण में नारी का चित्रण' में डॉ. मालती जैन ने नारी को तत्समय प्राप्त समस्त स्वतन्त्रताओं और सम्मान का सुन्दर वर्णन किया है। श्री वेद प्रकाश गर्ग का 'भरत : शब्द यात्रा' ऋषभपुत्र भरत के नाम पर देश का नाम भारत पड़ने हेतु महत्वपूर्ण दस्तावेज है। 'जैन समाज का यथार्थ-बोध' में डॉ.शशिकान्त ने आज की ज्वलन्त विसंगतियों पर युक्तियुक्त विचार प्रस्तुत किये हैं। रमाकान्त जी की क्षणिकाएं सुस्पष्ट संगत एवं सामयिक व्यंग्य-उद्‌बोधन संजोये हुए हैं। **शोधादर्श १-४२** की समग्र अनुक्रमणिका उपयोगी है। सम्पूर्ण अंक ज्ञानवर्धक, चिन्तनीय और मननीय है।

'बीसवीं शताब्दी रत्न' सम्मान पाने हेतु डॉ. शशिकान्त को बधाई, किन्तु उनकी 'अलविदा' मन कचोटती है।

-मनोज कुमार जैन 'निर्लिप्त', अलीगढ़

आभार

❑ तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ. प्र., के अध्यक्ष **श्री लूण करण जी नाहर,** राजेन्द्र नगर, लखनऊ ने समिति के **शोध पुस्तकालय** की गतिविधियों के संवर्द्धन के लिए रु. ५०००/- की विशेष सहायता प्रदान की।

❑ **डॉ. आर. के. अग्रवाल,** सी-२४५, साउथ सिटी, लखनऊ ने समिति के **शोध पुस्तकालय** के लिये १००१ रु. की सहयोग राशि प्रदान की।

❑ समिति के महामंत्री **श्री अजित प्रसाद जैन,** पारस सदन, आर्यनगर, लखनऊ ने अपनी पूज्य माताजी की २५वीं पुण्यतिथि पर **शोधादर्श** को रु. ५१ तथा समिति के आजीवन सदस्य रहे अपने स्व. पुत्र मणिकान्त जैन की प्रथम पुण्य तिथि पर **शोध पुस्तकालय** को रु. ५१ भेंट किए।

❑ **श्री ताराचंद जैन अग्रवाल,** पचेवर (टोंक) ने श्रीमती कपूरी देवी धर्मपत्नी श्री पांचूलाल जैन अग्रवाल की पुण्य स्मृति में ३० रु. तथा अपने पिताश्री श्री पांचूलाल जी की पुण्य स्मृति में २५ रु. **शोधादर्श** को भेंट किये।

❑ **डॉ० महावीर प्रसाद जैन 'प्रशान्त',** डी-११/६, राजेन्द्र नगर, लखनऊ ने अपनी धर्मपत्नी स्व. कृष्णा कुमारी जैन (निधन ३० मार्च, २००१) की पुण्य स्मृति में **शोधादर्श** को १०१ रु. भेंट किये।

❑ ३ मई, १६०१ ई. को कैम्पबेलपुर (अब पाकिस्तान में) में जन्मे तथा १७ मई, १६६४ ई. को अलीगंज, जिला एटा (उत्तर प्रदेश) में दिवगंत हुए डॉ. कामता प्रसाद जैन का जैन समाज सदैव आभारी रहेगा कि उन्होंने अपने अध्यवसाय और लगन से जैन धर्म, साहित्य, कला और इतिहास का सच्चे मिशनरी के रूप में विश्वव्यापरी प्रचार करने का सद्प्रयास किया। इस हेतु उन्होंने विश्व जैन मिशन की स्थापना की, और डॉ. ज्योति प्रसाद जैन सरीखे जैन विद्या के मर्मज्ञ विद्वानों को अपने मिशन से जोड़ा। इस जन्म शती वर्ष में उनके प्रति सच्चे श्रद्धा-सुमन यही हैं कि उनके द्वारा प्रशस्त मार्ग पर बढ़कर आज के विद्वान अपनी वाणी, लेखनी और आचरण से जैन धर्म, साहित्य,इतिहास और कला की सच्ची प्रभावना करें।

-रमाकान्त जैन

महावीर पुरस्कार वर्ष २००१
एवं
ब्र. पूरणचन्द रिद्धिलता लुहाड़िया पुरस्कार २००१

जैन विद्या संस्थान श्री महावीरजी के वर्ष २००१ के **महावीर पुरस्कार** एवं **ब्र. पूरणचन्द रिद्धिलता लुहाड़िया पुरस्कार** हेतु जैन धर्म, दर्शन, इतिहास, साहित्य, संस्कृति आदि से सम्बंधित और ३१ दिसम्बर, १९९६ के पश्चात प्रकाशित किसी भी विषय की पुस्तक/शोध प्रबन्ध की चार प्रतियां दिनांक **३० सितम्बर, २००१** तक आमंत्रित हैं। नियमावली तथा आवेदन पत्र का प्रारूप संस्थान कार्यालय दिगम्बर जैन नसियाँ भट्टारकजी, सवाई रामसिंह रोड, जयपुर-४ से प्राप्तव्य है।

स्वयंभू पुरस्कार २००१

श्री महावीरजी द्वारा संचालित अपभ्रंश साहित्य अकादमी, जयपुर के वर्ष २००१ के **स्वयंभू पुरस्कार** हेतु अपभ्रंश साहित्य से सम्बन्धित विषय पर हिन्दी अथवा अंग्रेजी में रचित और ३१ दिसम्बर, १९९६ के पश्चात प्रकाशित तथा पहले से अपुरस्कृत रचनाओं की चार प्रतियां **३० सितम्बर, २००१** तक आमंत्रित हैं। नियमावली तथा आवेदनपत्र का प्रारूप अकादमी कार्यालय दिगम्बर जैन नसियाँ भट्टारक जी, सवाई रामसिंह रोड, जयपुर-४ से प्राप्तव्य है।

'जैन धर्म और पर्यावरण संरक्षण'
निबन्ध प्रतियोगिता

नवयुवकों के बौद्धिक विकास एवं जैन धर्म, दर्शन के प्रति उनकी जागरूकता बनाये रखने हेतु पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी ने **'जैन धर्म और पर्यावरण संरक्षण' निबन्ध प्रतियोगिता २००१-२००२** हेतु विद्यापीठ के कर्मचारियों और उनके निकट सम्बन्धियों को छोड़कर शेष सभी व्यक्तियों से **३० सितम्बर, २००१** तक निबन्ध आमंत्रित किये हैं। १८ वर्ष तक की आयु वाले प्रतियोगियों के निबन्ध का आकार डबल स्पेस फुलस्केप साइज में ४ टंकित पृष्ठ और इससे अधिक आयु वालों के लिये ८ पृष्ठ निर्धारित है। प्रतियोगिता सम्बंधी अन्य नियमों आदि हेतु डॉ. सागरमल जैन, सचिव, पार्श्वनाथ विद्यापीठ, आई.टी. आई. रोड, करौंदी, वाराणसी- २२१००५ से सम्पर्क करें।

आ. श्रीकैलाससागरसूरि ज्ञानमन्दिर
श्रीमहावीर जैन आराधना केन्द्र
कोबा (गांधीनगर) पि 382009

आवश्यक सूचना

वर्ष २००१ का वार्षिक शुल्क ५० रु. (पचास रुपये), यदि अभी नहीं भेजा हो, तो कृपया मनीआर्डर द्वारा 'महामंत्री, तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ. प्र., पारस सदन, आर्य नगर, लखनऊ-२२६ ००४', को शीघ्र ही भेजने का अनुग्रह करें। **चेक अथवा ड्राफ्ट न भेजें।** एक प्रति का मूल्य २० रु. (बीस रुपये) है।

शोधादर्श चातुर्मासिक पत्रिका है और सामान्यतया इसके अंक मार्च, जुलाई व नवम्बर में प्रकाशित होते हैं।

शोधादर्श में प्रकाशनार्थ शोधपरक एवं अप्रकाशित लेख आमंत्रित हैं। लेख कागज के एक ओर सुवाच्य अक्षरों में लिखित अथवा टंकित होना चाहिये और उसमें यथावश्यक सन्दर्भ/स्रोत सूचित किये जाने चाहिएं। यथासंभव लेख ३-४ टंकित पृष्ठ से अधिक न हो। **लेख की एक प्रति अपने पास अवश्य रख लें।**

शोधादर्श में समीक्षार्थ पुस्तकों तथा पत्र-पत्रिकाओं की **दो प्रतियां** भेजी जायें।

शोधादर्श में प्रकाशित लेखों को उद्धरित किये जाने में आपत्ति नहीं है, परन्तु **शोधादर्श** का श्रेय स्वीकार किया जाना और पूर्ण सन्दर्भ दिया जाना अपेक्षित है।

प्रकाशनार्थ लेख और समीक्षार्थ पुस्तक/पत्रिका सम्पादक को पारस सदन, आर्य नगर, लखनऊ-२२६ ००४, के पते पर भेजे जायें।

लेखक के विचारों से सम्पादक मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है। लेखों में दिये गये तथ्यों और सन्दर्भों की प्रामाणिकता के संबंध में लेखक स्वयं उत्तरदायी है।

सभी विवाद लखनऊ में स्थित सक्षम न्यायालयों /न्यायाधिकरणों के क्षेत्राधिकार के अधीन होंगे।

सुधी पाठक कृपया अपनी सम्मति और सुझावों से अवगत करावें ताकि पत्रिका के स्तर को बनाये रखने और उन्नत करने में हमें प्रोत्साहन तथा मार्गदर्शन प्राप्त होता रहे। कृपया पत्रिका पहुंचने की सूचना भी देवें।

- प्रधान सम्पादक

□□□